* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

# कल्याण

मूल्य १० रुपये

श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर, अयोध्या

अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्‌जी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

**आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।**
**दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥**


वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, सितम्बर २०२० ई० | संख्या ९

पूर्ण संख्या ११२६


# अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्‌जी

**अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं**
**दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।**
**सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं**
**रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥**

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु)-के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [-को ध्वंस करने]-के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ। [ **श्रीरामचरितमानस** ]

**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥**

(संस्करण २,००,०००)

**कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, सितम्बर २०२० ई०**

# विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|
| १- अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्‌जी | ३ |
| २- कल्याण | ५ |
| ३- श्रीरामजन्मभूमि अयोध्याका इतिहास **[ आवरणचित्र-परिचय ]** | ६ |
| ४- मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) | ७ |
| ५- देशका नामकरण (पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा) | ९ |
| ६- भगवान्‌का मंगल विधान [सत्य घटना] (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) | ११ |
| ७- प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय | १२ |
| ८- मरणोपरान्तकी क्रिया (श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) | १३ |
| ९- शरीरसे अलगावका अनुभव **[ साधकोंके प्रति ]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) | १७ |
| १०- आसुरी खान-पान—रोगोंको निमन्त्रण | १९ |
| ११- श्राद्ध—क्या, क्यों, कैसे ? (श्रीहितसुकृतलालजी गोस्वामी) | २० |
| १२- श्राद्धसे जगत्‌की तृप्ति | २४ |
| १३- अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें **[ सम-सामयिक ]** (डॉ० श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी, एम.एस-सी., एल.एल.एम., पी-एच.डी.) | २५ |
| १४- झाँकी देखिय अवधपुरी की **[ कविता ]** (अवधबासी श्रीसीतारामजी 'भूप') | २८ |
| १५- मनके जीते जीत (डॉ० श्रीसुनीलकुमारजी सारस्वत) | २९ |
| १६- भज मन रामचरन सुखदाई **[ कविता ]** | ३१ |
| १७- वाराणसी—एक तात्त्विक विवेचन **[ तीर्थ-चिन्तन ]** (प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज') | ३२ |
| १८- सिद्ध हनुमद्भक्त पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदी **[ संत-चरित ]** (पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय) | ३६ |
| १९- सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) | ३९ |
| २०- साक्षीभाव (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतीय धर्मसंघ) | ४० |
| २१- **साधनोपयोगी पत्र** | ४३ |
| (१) जीव और आत्मा | ४३ |
| (२) हनुमान्‌जी और रावणका स्वरूप | ४३ |
| २२- **व्रतोत्सव-पर्व** [आश्विनमासके व्रत-पर्व] | ४५ |
| २३- **कृपानुभूति**—स्वर्गसे वापसी | ४६ |
| २४- **पढ़ो, समझो और करो** | ४७ |
| (१) सादा जीवन, उच्च विचार | ४७ |
| (२) भूल | ४८ |
| (३) गुस्सा न आनेका उपाय | ४९ |
| २५- **मनन करने योग्य** | ५० |
| लक्ष्मीजीके अनुकूल वातावरण तैयार करें | ५० |


## चित्र-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १- श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर, अयोध्या | (रंगीन) | आवरण-पृष्ठ |
| २- अतुलितबलधाम श्रीहनुमान्‌जी | ( ” ) | मुख-पृष्ठ |
| ३- भगवान्‌की ओर बढ़ता चतुर सारथी | (इकरंगा) | ७ |
| ४- पतनकी ओर बढ़ता अविवेकी सारथी | (इकरंगा) | ८ |
| ५- भारतमाता | ( ” ) | ९ |
| ६- काशीविश्वनाथ मन्दिर, वाराणसी | ( ” ) | ३२ |


**जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥**
**जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥**
**जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥**


**एकवर्षीय शुल्क** ₹ २५०

**पंचवर्षीय शुल्क** ₹ १२५०

**विदेशमें Air Mail शुल्क** — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

**केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित**

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

**Online सदस्यता हेतु gitapress.org** पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

**अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org** अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

# कल्याण

***याद रखो***—'स्व' तथा 'स्वार्थ' जितना ही संकीर्ण और संकुचित होगा, उतना ही वह दुःख, कष्ट, संताप, शोक, विषाद तथा भय उत्पन्न करेगा। जो लोग संकुचित 'स्व'में रहते हैं, और सीमित क्षुद्र 'स्वार्थ'के द्वारा पराजित हैं, वे स्वयं तथा उनकी योग्यता केवल 'मैं', तथा 'मेरे' 'शरीरके नाम' तथा 'शरीर' तक ही केन्द्रित हो जाती है।

***याद रखो***—जब शरीरके नाम तथा शरीरतक ही 'स्व' रह जाता है, तब 'स्व' वैसे ही गन्दा होता है, जैसे छोटेसे गड्ढेमें इकट्ठा हुआ पानी। फिर उस मनुष्यका 'स्वार्थ' गन्दा हो जाता है और वह दूसरोंको दुःख देकर सुखी होना चाहता है, क्रोधके द्वारा सद्भाव प्राप्त करना चाहता है, कलहपूर्ण साधनोंके द्वारा शान्ति पाना चाहता है और घृणाके द्वारा प्रेम-लाभ करना चाहता है। पर उसका यह सारा प्रयत्न बालूमेंसे तेल निकालनेकी तरह निष्फल तो होता ही है, उलटा बुद्धिको बिगाड़कर पाप पैदा करनेवाला होता है।

***याद रखो***—'शरीरके नाम' तथा 'शरीर'तक जिसका 'स्व' सीमित हो जाता है, वह यदि कभी कोई अच्छा काम भी करता है तो 'नामकी जय-जयकार' सुननेके लिये और मांसपिण्ड 'शरीरकी पूजा' करवानेके लिये करता है। सुन्दर शुभ कर्म यदि समस्त जगत्‌के प्राणियोंमें 'स्व'का विस्तार करके उन सबके हितको स्वार्थ समझकर हो, सबको सुख पहुँचानेकी पवित्र भावनासे हो तो उससे भगवान्‌की बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। उसमें एक विलक्षण रस, एक पवित्र माधुर्य तथा आत्मसन्तोष एवं शान्ति रहती है, पर वहाँ न तो 'नामकी जय-जयकार' होती है और न 'शरीरकी पूजा' ही होती है।

***याद रखो***—'क्षुद्र स्वार्थ'के कारण ही मनुष्य केवल अपने 'शारीरिक सुख' और 'नामके यश'के लिये चिन्तित रहता है और दिन-रात उसीकी प्राप्तिके प्रयत्नमें लगा रहता है, उसे विश्वात्माकी भावना एवं भगवत्पूजाके लिये भगवत्स्मरण करनेका अवकाश ही नहीं मिलता। पूजाकी बात तो दूर रही, क्षुद्र स्वार्थके लिये भी उससे भगवत्स्मरण नहीं हो पाता। वह दिन-रात भोगचिन्तनमें ही लगा रहता है और उसके फलस्वरूप मनुष्य-जीवनका सर्वनाश कर बैठता है।

***याद रखो***—समस्त जगत्‌के समस्त प्राणी भगवान्‌से निकले हैं, सभी प्राणियोंमें एकमात्र भगवान् व्याप्त हैं। भगवान् ही आत्मरूपसे सर्वभूतोंके आशयमें स्थित हैं, अतएव भगवत्स्वरूपके नाते सभी पूज्य और सेव्य हैं तथा आत्माकी दृष्टिसे सभी अपने स्वरूप ही हैं, यह समझकर अपने 'स्व' का विस्तार करो, सबसे सदा-सर्वदा सम्पूर्णरूपमें अपने ही आत्मस्वरूपका विस्तार करो। फिर सबका स्वार्थ (स्व-अर्थ) ही तुम्हारा स्वार्थ बन जायगा। वह फिर बहते हुए पवित्र सरिता-जलकी भाँति स्वच्छ, निर्मल और सर्वभूतहितकर हो जायगा।

***याद रखो***—भगवान् ही आत्मारूपसे प्रकाशित हैं, अतएव यदि अपनेको अलग भी समझो तो, इस रूपमें कि, 'मैं सेवक हूँ तथा चराचर जगत्-स्वरूप भगवान् मेरे सेव्य हैं'—ऐसा दृढ़ निश्चय हो जानेपर तुम्हारे द्वारा जो कुछ भी होगा, सब भगवान्‌का पूजन ही होगा और समस्त क्रिया तथा चेष्टा भगवत्पूजन-रूप होनेसे परम पवित्र तथा परम श्रेयस्कर हो जायगी। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

# श्रीरामजन्मभूमि अयोध्याका इतिहास

सात मोक्षदायिनी नगरियोंमें प्रथम नगरी अयोध्या सतयुगमें महाराज मनुने बसायी थी। सरयू नदीके किनारे बसी यह नगरी १२ योजन ( १४४ कि० मी० ) लम्बी तथा ३ योजन ( ३६ कि०मी० ) चौड़ी थी। चक्रवर्ती सम्राट् दशरथजीने इसे विशेष रूपसे बसाया था। इसमें सभी प्रकारके बाजार थे तथा इसकी रक्षा खाइयों, किवाड़ों और शतघ्नियोंसे होती थी। महाराज इक्ष्वाकु, अनरण्य, मान्धाता, प्रसेनजित्, भरत, सगर, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, ककुत्स्थ, रघु, अम्बरीष-जैसे सम्राटोंकी यह राजधानी रही है। श्रीरामजीकी आज्ञासे इसके प्रधान देवता हनुमान्‌जी हैं। श्रीरामके परमधाम पधारनेपर यह नगरी जनशून्य हो गयी थी। तब महाराज कुशने इसे पुनः बसाया था। यह पावन नगरी पुनः लुप्त हो गयी थी, तब लगभग २५०० वर्ष पूर्व उज्जयिनीके सम्राट् विक्रमादित्यने इसकी खोजकर इसे पुनः बसाया। १५२८ ई०में बाबरके सेनापति मीर बाँकीने यहाँके श्रीरामजन्मभूमि-मन्दिरको ध्वस्त किया, तभीसे हिन्दू जनता, राजा तथा संत-समाज इसकी मुक्तिके लिये संघर्षरत रहे हैं। श्रीरामजन्मभूमि-मन्दिरकी रक्षाके लिये संघर्षका लम्बा इतिहास संक्षेपमें इस प्रकार है—

बाबरके पुत्र हुमायूँके शासनकालमें हसवरके स्वर्गीय राजा रणविजयसिंहकी महारानी जयराजकुमारीने तीस हजार स्त्री सैनिकोंके साथ मन्दिरपर पुनः अधिकार कर लिया। उनके गुरु स्वामी रामेश्वरानन्दने हिन्दू-जनजागरण किया। किंतु तीसरे दिन हुमायूँकी सेना आ गयी और पुनः मुसलमानोंका कब्जा हुआ। अकबरके समयमें हिन्दुओंने बीस बार आक्रमण किया, किंतु उन्नीस बार असफल रहे। २०वीं बार रानी और उनके गुरु बलिदान हो गये, किंतु हिन्दुओंने चबूतरेपर कब्जाकर राम मंदिर बनाया। जहाँगीर एवं शाहजहाँके समयमें शान्ति रही। औरंगजेबने जाँबाजके नेतृत्वमें सेना भेजी, पर स्वामी वैष्णवदासके दस हजार चिमटाधारी साधुओंने मुगल-सेनाको भगा दिया। तब औरंगजेबने प्रधान सेनापति सैयद हसन अली खाँके साथ पचास हजार सैनिक भेजे, किंतु वैष्णवदासके चिमटाधारी शिष्य तथा गुरुगोविन्द सिंहके सिख वीरोंने सेनापतिसहित मुगल सेनाका संहार कर डाला। चार वर्षतक औरंगजेबने हिम्मत नहीं की। किंतु चार वर्ष बाद अचानक हमलाकर मुगल सेनाने पुनः कब्जा कर लिया। अवधके नवाब सआदत अलीके समय अमेठीके राजा गुरुदत्तसिंहने नवाबके साथ घोर संग्रामकर पुनः हिन्दुओंका कब्जा करवाया। राजा देवीबख्शसिंहने नासिरुद्दीन हैदरके साथ सात दिनतक संग्रामकर उसे पराजित किया। इस प्रकार जन्मभूमिपर हिन्दुओं तथा मुसलमानोंका बार-बार कब्जा होता रहा। सन् १८५७ ई०के प्रथम स्वतंत्रता संग्राममें मीर अली तथा रामशरणदासने मिलकर शांतिपूर्वक जन्मभूमि हिन्दुओंको सौंपनेका प्रयत्न किया। किंतु अंग्रेजोंकी 'फूट डालो' नीतिने इसे सफल नहीं होने दिया। अंग्रेजी शासनकालमें १९१२-१३में हिन्दुओंने दो बार आक्रमण किये, किंतु सफल नहीं रहे।

१ फरवरी १९८६को न्यायालयके आदेशसे श्रीराम-जन्मभूमिका ताला खुला तथा हिन्दुओंको पूजन और दर्शनकी अनुमति मिली। वहाँ राम चबूतरा बना और भजन-कीर्तन भी होने लगा, परंतु मुस्लिम पक्षको वहाँ हिन्दू भावनाओंके अनुरूप राष्ट्र-देवता भगवान् श्रीरामका भव्य मन्दिर बनने देना स्वीकार्य नहीं था। इसके लिये आन्दोलन हुआ, जिसमें अनेक हिन्दू भक्तोंने अपनी आहुति दी। अन्ततोगत्वा ६ दिसम्बर १९९२ को आन्दोलनरत हिन्दू जनताने बाबरी ढाँचा ध्वस्त कर दिया। तब विवाद उच्च न्यायालयमें गया। उच्च न्यायालयने रामलला, निर्मोही अखाड़ा और मुस्लिम पक्ष—तीनोंको बराबर-बराबर भूमि दे दी, परंतु मुस्लिम पक्षको यह फैसला रास नहीं आया और उन्होंने सुप्रीम कोर्टमें अपील की। सुप्रीम कोर्टने ९ नवम्बर २०१९ को फैसला सुनाया, जिसके अनुसार सम्पूर्ण भूमि रामलला विराजमानको दे दी गयी। इस प्रकार मन्दिर-निर्माणका मार्ग प्रशस्त हुआ।

**[ डॉ० श्रीराम अवतारजी कृत 'जहँ जहँ रामचरन चलि जाहिं...' के आधारपर ]**

# मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करे

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

कठोपनिषद्में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोड़े, मनको लगाम, बुद्धिको सारथि, इन्द्रियोंके विषयोंको रथके चलनेका मार्ग और जीवात्माको रथी बतलाया गया है। परमात्मासे बिछुड़े हुए जीवात्माको इसी रथके द्वारा विषयोंके मार्गपर चलकर ही परमात्माके धाम—अपने घर पहुँचना है। रथको घोड़े ही चलाते हैं, परंतु घोड़े उच्छृंखल होकर उलटे मार्गपर भी जा सकते हैं और सीधे परमात्माके मार्गपर भी चल सकते हैं। जिस रथका सारथि विवेकयुक्त, अप्रमत्त, स्वामीका आज्ञाकारी, लक्ष्यपर स्थिर, बलवान्, रास्तेका जानकार और घोड़ोंको लगामके सहारेसे अपने वशमें रखकर—इच्छानुसार सन्मार्गपर चला सकता है, वह रथ अपने लक्ष्यपर पहुँच जाता है। इसी प्रकार जिस पुरुषकी बुद्धि विवेकसम्पन्न, जीवात्माको परमात्माके धाममें ले जानेके लिये तत्पर, परमात्मामें लगी हुई, मन-इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाली, सदा सावधानीके साथ सबको साधन-मार्गपर ले चलनेवाली होती है, वह पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरता हुआ

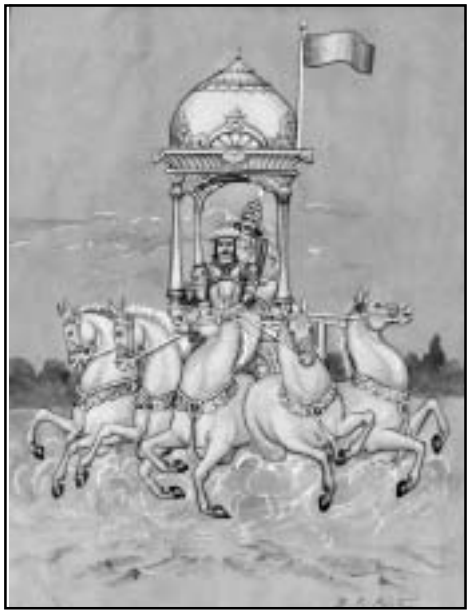

भी—जैसे सत्-सारथिके द्वारा संचालित रथ मार्गपर चलकर लक्ष्यकी ओर बढ़ता रहता है, वैसे ही—परमात्माकी ओर बढ़ता रहता है। इन्द्रियाँ तथा मन यदि साधकके अपने वशमें हों और साधक उन्हें भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही लगाये रखे तो इस प्रकार उन इन्द्रियोंका विषयोंमें विचरण करना हानिकारक नहीं है, प्रत्युत लाभदायक है; क्योंकि ऐसा करके वह परमात्माके समीप पहुँच जाता है। जबतक शरीर, इन्द्रियाँ और मन हैं, तबतक उनको विषयोंसे सर्वथा अलग कर देना सम्भव नहीं है, अतएव साधक उनमेंसे राग-द्वेषको हटाकर विशुद्ध बना ले और फिर उनका यथायोग्य साधनरूप विषयसेवनमें उपयोग करे। भगवान्‌ने कहा है—

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।**
**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥**
**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**
**प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥**

(गीता २।६४-६५)

'परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।'

यह है वशमें किये हुए मनसे राग-द्वेष-रहित इन्द्रियोंके सद्विषयोंमें विचरण करनेका परिणाम! जिन मन-इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रिय-सुखकी आशासे विषयोंका उपभोग करके दुःखोंको निमन्त्रण दिया जाता है, उन्हीं मन-इन्द्रियोंसे उन्हें साधनमें लगाकर परमात्माकी प्राप्ति की जा सकती है; परंतु जिसकी बुद्धि असावधान है, निर्बल है, इन्द्रियोंके तथा मनके अधीन है, प्रमत्त है, लक्ष्यशून्य है और परमात्माको भूली हुई है; उसको यही शरीर-रथ विपरीत मार्गमें

अग्रसर होकर वैसे ही सर्वथा पतनके गर्तमें गिरा

देता है, अथवा किसी भयानक दुष्कर्मरूपी पत्थरोंसे भिड़ाकर मानव-जीवनको चूर-चूर कर डालता है, जैसे असावधान और निर्बल सारथिके द्वारा लगामको प्रचण्ड बलवाले घोड़ोंके अधीन छोड़ देनेपर घोड़े उस रथको सारथि और रथीसहित गहरे गड्ढेमें डाल देते हैं, अथवा किसी दीवालसे टकराकर चकनाचूर कर डालते हैं।

विचार करनेपर यह पता लगता है कि इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही बहिर्मुखी हैं। वे नित्य-निरन्तर विषयोपभोगके लोभमें पड़ी हुई विषयोंकी ओर दौड़ती और मन-बुद्धिको भी बलपूर्वक खींचती रहती हैं। अत: उनको सदा-सर्वदा सावधानीसे मनके सहारेसे यानी मनको उनके साथ न जाने देकर वशमें रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। इन्द्रियाँ वशमें न होंगी और मन उनका साथ देने लगेगा तो वे बुद्धिको वैसे ही विचलित कर देंगी, जैसे जलमें पड़ी हुई नौकाको वायु डगमगा देती है। भगवान्‌ने गीताजीमें यही कहा है—

**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।**
**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥**

(२।६७)

'क्योंकि जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु हर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है।' इसपर भगवान् कहते हैं—

**तस्माद् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥**

(२।६८)

'इसलिये हे महाबाहो! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है।'

जिस प्रकार चतुर और सुयोग्य केवट नावको भँवरसे तथा प्रबल जलधारामें बहनेसे बचाकर, खास करके, पालके सहारेसे वायुको अनुकूल बनाकर सावधानीसे डाँड़ खेता हुआ मार्गपर अग्रसर होता रहता है तो नाव सुरक्षित अपने स्थानपर पहुँच जाती है। इसी प्रकार भ्रम-प्रमादादिसे रहित सुयोग्य एकनिष्ठ बुद्धि मन-इन्द्रियोंसे युक्त शरीर-रथको राग-द्वेषरूपी भँवर तथा कामनारूपी तीव्रधार जलके प्रवाहसे बचाकर सत्संगरूपी पालके सहारेसे भगवत्कृपारूप वायुको अनुकूल बनाकर आगे बढ़ता रहता है, तो वह सुरक्षित भगवान्‌के धाममें पहुँच जाता है।

अतएव साधकको चाहिये कि वह अपनेको शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धिका स्वामी मानकर उनके वशमें न हो, बल्कि इन्द्रियोंको पतनकारक तथा अनावश्यक उनके मनमानी विषयोंमें जानेसे रोककर, उनमें रहे हुए राग-द्वेषसे उन्हें छुड़ाकर मनको वशमें करे और बुद्धिको एक परमात्मनिष्ठ निश्चयात्मिका बनाकर परमात्मामें स्थिर कर दे। यथार्थत: ऐसा हो जानेपर तो मन-इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले सभी कार्य सहज ही भगवत्-कार्य बन ही जायँगे। परंतु इसके पहले साधनकालमें भी इस आदर्शके अनुसार साधन करनेसे चित्तकी प्रसन्नता—निर्मलता प्राप्त हो जाती है और उसके द्वारा भगवत्प्राप्तिका मार्ग सुलभ और प्रशस्त हो जाता है। अत: साधकका कर्तव्य है कि वह इस प्रकार साधन करके मानव-जीवनके परम लक्ष्य परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त करे।

# देशका नामकरण

( पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

अपने देशका नामकरण (भारतवर्ष) कैसे हुआ? वस्तुतः इसमें तनिक भी विवादका अवकाश नहीं है। स्वायम्भुव मनुसे ही मानवी सृष्टि प्रारम्भ हुई—

**स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥**

इनके कनिष्ठ पुत्र थे प्रियव्रत। उन्होंने रातमें भी प्रकाश रखनेकी इच्छासे ज्योतिर्मय रथद्वारा सात बार वसुधातलकी परिक्रमा की। इससे जो परिखाएँ बनीं, वे ही सप्तसिन्धु हुए। फिर उनके अन्तर्वर्ती क्षेत्र सात महाद्वीप हुए। ये क्रमसे पूर्व-पूर्वके द्विगुणित परिमाणके हैं। ये जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर नामसे प्रसिद्ध हैं तथा क्रमशः क्षारोद, इक्षुरस आदिसे घिरे हैं। परिमाणको देखते तथा क्षार समुद्रसे ही आवेष्टित होनेके कारण आजका पूर्ण भूगोल जम्बूद्वीप ही है। प्रियव्रत के दस* पुत्रोंमेंसे कवि, सवन और महावीर—इन तीनके विरक्त हो जानेके कारण शेष सात इन सात द्वीपोंके अधिपति हुए। इनमेंसे आग्नीध्र जम्बूद्वीपके, इध्मजिह्व प्लक्षके, यज्ञबाहु शाल्मलिद्वीपके, हिरण्यरेता कुशद्वीपके, घृतपृष्ठ क्रौंचद्वीपके, मेधातिथि शाकद्वीपके और वीतिहोत्र पुष्करद्वीपके अधिपति हुए। (देखिये देवीभागवत ८।४।१—२८; श्रीमद्भा० ५।१।३३; मार्कण्डेयपुराण ५३।१५—१९; वायुपुराण ३३।३—७; वराहपुराण अ० ७४; कूर्मपुराण अ० ८, अ० ४०।३०-४०; शिवपुराण, ज्ञानसंहिता ४७; स्कन्दमहापुराण-माहेश्वरखण्ड, कुमारिका-खण्ड अ० ३१)

जम्बूद्वीपाधिपति आग्नीध्रके नौ पुत्र हुए। ये थे नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमाल। सम विभागके लिये जम्बूद्वीपको नौ भागोंमें बाँट दिया गया और इनके नामपर ही तत्तद्विभागोंके नामकरण हुए—

**'आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बुद्वीपवर्षाणि बुभुजुः।'**

(श्रीमद्भा० ५।२।२१, मार्कण्डेयपुराण ५३।३१—३५, वायुपुराण ३३। ब्रह्माण्ड, कूर्मपुराण आदिके उपर्युक्त स्थल)

आठ वर्षोंके नाम तो किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष आदि ही पड़े, किंतु ज्येष्ठ पुत्रका भाग 'नाभि' से अजनाभ हुआ। नाभिके एक ही पुत्र ऋषभदेव थे, जिनकी गणना भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंमें की जाती है, वे जैनधर्मके आदि तीर्थंकर भी माने जाते हैं। ऋषभदेवके एक सौ पुत्र हुए, जिनमें गुणोंमें श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ थे भरत। उनकी अत्यन्त लोकप्रियता तथा सद्गुणशालिताके कारण 'अजनाभवर्ष' से 'भारतवर्ष' चल पड़ा। इस सम्बन्धमें निम्न प्रमाण हैं—

**'अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति।'**

(श्रीमद्भा० ५।७।३)

अर्थात् इस वर्षको, जिसका नाम पहले अजनाभवर्ष था, राजा भरतके समयसे ही भारतवर्ष कहते हैं।

**'भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।'** (श्रीमद्भा० ५।४।९)

अर्थात् उनमें भरतजी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्हींके नामसे लोग इस अजनाभखण्डको भारतवर्ष कहने लगे।

* प्रियव्रतकी तीन स्त्रियाँ थीं। ये दस पुत्र विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मती नामकी स्त्रीसे थे।

**'तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः।**
**विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम्॥'**

(श्रीमद्भा० ११।२।१७)

अर्थात् उनमें सबसे बड़े थे राजर्षि भरत। वे भगवान् नारायणके परम प्रेमी भक्त थे। उन्हींके नामसे यह भूमिखण्ड, जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था, 'भारतवर्ष' कहलाया।

**ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः।**
**ततश्च भारतं वर्ष मेतल्लोकेषु गीयते॥**

(विष्णुपुराण २।१।२८, ३२)

अर्थात् ऋषभजीसे भरतका जन्म हुआ, जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। तबसे यह (हिमवर्ष) इस लोकमें भारतवर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

**'हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।**
**तस्मात्तद्( तु )भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥'**

(वायुपुराण ३३।५२, ब्रह्माण्डपुराण २।१४।६२)

अर्थात् [ऋषभजीने] दक्षिणकी ओर स्थित 'हिमवर्ष' भरतको सौंप दिया। तभीसे बुधजन भरतके नामसे इस वर्षको भारतवर्ष कहने लगे।

**'ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद् भरतोऽभवत्।**
**भरताद् भारतं वर्षं भरतात् सुमतिस्त्वभूत्॥'**

(अग्निपुराण १०७।११-१२)

अर्थात् [हिमवर्षके शासक नाभिके] मेरुदेवीसे ऋषभदेव पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। ऋषभके पुत्र भरत हुए। भरतके नामसे भारतवर्ष प्रसिद्ध है। भरतसे सुमति हुए।

**'ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद् वरः।**
**हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।**
**तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः।**

(मार्कण्डेयपुराण ५३।३९—४१)

अर्थात् ऋषभसे भरतका जन्म हुआ था, जो कि वीर और अपने सौ भाइयोंमें सबसे श्रेष्ठ थे। पिताने दक्षिणकी ओरका वर्ष, जिसका नाम हिमालयके नामपर पड़ा था, भरतको दे दिया। इन्हीं महापुरुष भरतके नामपर उस वर्षका नाम भारतवर्ष रखा गया।

**ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्॥** (नारसिंहपुराण ३०।७)

अर्थात् ऋषभसे भरतका जन्म हुआ, जिनके द्वारा चिरकालतक धर्मपूर्वक पालित होनेके कारण इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा।

**आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपतिः।**
**आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते॥**

(बृहन्नारदीयपुराण पूर्वभाग ४८।५)

मुनिश्रेष्ठ! प्राचीन कालमें भरत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए थे, जो ऋषभदेवजीके पुत्र थे और जिनके नामपर इस देशको 'भारतवर्ष' कहते हैं।

**ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।**
**भरताय यः पित्रा दत्ता प्रातिष्ठता वनम्।**
**ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते।**

(कूर्मपुराण, ब्राह्मीसंहिता पूर्व० ४०।४१) इत्यादि

दुष्यन्तपुत्र भरतके नामपर देशका नामकरण भारत हुआ, यह परवर्ती मत है। दुष्यन्तपुत्र भरत तो ६ मन्वन्तर और ४२६ दिव्य युगोंके बाद हुए। इसके अनन्त वर्ष पूर्व ही देशका नाम 'भारत' हो चुका था। हाँ, उनके नामपर क्षत्रियोंकी एक शाखा भरतवंशी अवश्य ख्यात हुई, जिससे अर्जुन आदिको 'भारत' कहा गया है और यह वायुपुराणके तथा महाभारतके—

**भरताद् भारती कीर्तियेनेदं भारतं कुलम्।**
**अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः॥**

(आदिपर्व ७४।१३१)

अर्थात् [शकुन्तलापुत्र] भरतसे ही इस भूखण्डका नाम भारत (अथवा भूमिका नाम भारती) हुआ। उन्हींसे यह कौरववंश भारतवंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनके बाद उस कुलमें पहले तथा आज भी जो राजा हो गये हैं, वे भारत (भरतवंशी) कहे जाते हैं।

—से स्पष्ट है। 'भारताः' शब्द बहुवचन है, अतएव बहुतसे मनुष्योंका वाचक है। कुल तो स्पष्ट है ही। अभिज्ञानशाकुन्तल या अन्य ग्रन्थमें भी शकुन्तलापुत्रपर देशका नामकरण होनेकी बात नहीं आयी। अतएव उपर्युक्त मत सर्वथा निर्विवाद है।

# भगवान्‌का मंगल विधान

## [ सत्य घटना ]

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

[१]

पुरानी बात है—कलकत्तेमें सर कैलासचन्द्र वसु प्रसिद्ध डॉक्टर हो गये हैं। उनकी माता बीमार थीं। एक दिन श्रीवसु महोदयने देखा—माताकी बीमारी बढ़ गयी है, कब प्राण चले जायँ, कुछ पता नहीं। रात्रिका समय था। कैलास बाबूने बड़ी नम्रताके साथ माताजीसे पूछा—'माँ, तुम्हारे मनमें किसी चीजकी इच्छा हो तो बताओ, मैं उसे पूरी कर दूँ।' माता कुछ देर चुप रहकर बोलीं—'बेटा! उस दिन मैंने बम्बईके अंजीर खाये थे। मेरी इच्छा है अंजीर मिल जायँ तो मैं खा लूँ।' उन दिनों कलकत्तेके बाजारमें हरे अंजीर नहीं मिलते थे। बम्बईसे मँगानेमें समय अपेक्षित था। हवाई जहाज थे नहीं। रेलके मार्गसे भी आजकलकी अपेक्षा अधिक समय लगता था। कैलास बाबू बड़े दुखी हो गये—माँने अन्तिम समयमें एक चीज माँगी और मैं माँकी उस माँगको पूरी नहीं कर सका, इससे बढ़कर मेरे लिये दुःखकी बात और क्या होगी? पर कुछ भी उपाय नहीं सूझा। रुपयोंसे मिलनेवाली चीज होती तो कोई बात नहीं थी। कलकत्ते या बंगालमें कहीं अंजीर होते नहीं, बाजारमें मिलते नहीं। बम्बईसे आनेमें तीन दिन लगते हैं। टेलीफोन भी नहीं, जो सूचना दे दें। तबतक पता नहीं—माताजी जीवित रहें या नहीं, अथवा जीवित भी रहें तो खा सकें या नहीं। कैलास बाबू निराश होकर पड़ गये और मन-ही-मन रोते हुए कहने लगे—'हे भगवन्! क्या मैं इतना अभागा हूँ कि माँकी अन्तिम चाहको पूरी होते नहीं देखूँगा।'

रातके लगभग ग्यारह बजे किसीने दरवाजा खोलनेके लिये बाहरसे आवाज दी। डॉक्टर वसुने समझा, किसी रोगीके यहाँसे बुलावा आया होगा। उनका चित्त बहुत खिन्न था। उन्होंने कह दिया—'इस समय मैं नहीं जा सकूँगा।' बाहर खड़े आदमीने कहा—'मैं बुलाने नहीं आया हूँ, एक चीज लेकर आया हूँ—दरवाजा खोलिये।' दरवाजा खोला गया। सुन्दर टोकरी हाथमें लिये एक दरवानने भीतर आकर कहा—'डॉक्टर साहब! हमारे बाबूजी अभी बम्बईसे आये हैं, वे सबेरे ही रंगून चले जायँगे, उन्होंने यह अंजीरकी टोकरी भेजी है, वे बम्बईसे लाये हैं। मुझसे कहा है कि मैं सबेरे चला जाऊँगा—अभी अंजीर दे आओ। इसीलिये मैं अभी लेकर आ गया। कष्टके लिये क्षमा कीजियेगा।'

कैलास बाबू अंजीरका नाम सुनते ही उछल पड़े। उन्हें उस समय कितना और कैसा अभूतपूर्व आनन्द हुआ, इसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। उनकी आँखोंमें हर्षके आँसू आ गये, शरीरमें आनन्दसे रोमांच हो आया। अंजीरकी टोकरीको लेकर वे माताजीके पास पहुँचे और बोले—'माँ! लो—भगवान्‌ने अंजीर तुम्हारे लिये भेजे हैं।' उस समय माताका प्रसन्नमुख देखकर कैलास बाबू इतने प्रसन्न हुए, मानो उन्हें जीवनका परम दुर्लभ महान् फल प्राप्त हो गया हो।

बात यह थी, एक गुजराती सज्जन, जिनका फार्म कलकत्ते और रंगूनमें भी था, डॉक्टर कैलास बाबूके बड़े प्रेमी थे। वे जब-जब बम्बईसे आते, तब अंजीर लाया करते थे। भगवान्‌के मंगल विधानका आश्चर्य देखिये, कैलास बाबूकी मरणासन्न माता आज रातको अंजीर चाहती है और उसकी चाहको पूर्ण करनेकी व्यवस्था बम्बईमें चार दिन पहले ही हो जाती है और ठीक समयपर अंजीर कलकत्ते उनके पास आ पहुँचते हैं! एक दिन पीछे भी नहीं, पहले भी नहीं।*

[२]

पुरानी बात है। स्वर्गीय भाई कृष्णकान्तजी मालवीय नैनी जेलमें थे, उनको बस्ती स्थानान्तरित किया गया। श्रीकृष्णकान्तजी मुझे अपना भाई मानते थे। उनकी मेरे प्रति अकृत्रिम प्रीति तथा परम आत्मीयता थी। इससे उन्होंने गीताप्रेसके पतेसे मेरे नाम तार दिया कि 'हमलोग कई आदमी रेलसे गोरखपुर होकर बस्ती जा रहे हैं—गोरखपुर स्टेशनपर भोजनकी व्यवस्था कीजिये।' गोरखपुरमें उन दिनों सन्ध्याको लगभग पाँच बजे ट्रेन पहुँचती थी। तार

* डॉ० श्रीकैलासचन्द्र महोदयने यह घटना स्वयं मुझे सुनायी थी। बहुत दिनोंकी बात होनेसे लिखनेमें कहीं कुछ साधारण गलती भी रह सकती है।—ह० प्र०

गीताप्रेसमें आया। उन लोगोंने कुछ भी व्यवस्था न करके तार मेरे पास एक साइकिलवाले आदमीके हाथ भेज दिया, मैं प्रेससे लगभग साढ़े तीन मील दूर ऐसी जगह रहता था, जहाँ उन दिनों इक्के, ताँगे कुछ भी नहीं मिलते थे। न मोटर थी, न टेलीफोन। वह आदमी लगभग पौने पाँच बजे मेरे पास पहुँचा। घरमें भोजनका सामान भी बनाया तैयार नहीं था। प्रेसके लोगोंपर मुझे झुँझलाहट हुई कि उन्होंने व्यवस्था न करके तार मेरे पास क्यों भेज दिया। स्टेशन यहाँसे तीन मील दूर है, सवारी पास नहीं, सामान तैयार नहीं। कुल १५-२० मिनटका समय ट्रेन आनेमें है। मेरे मनमें बड़ा खेद था—'भाई कृष्णकान्तजीको भोजन नहीं मिलेगा, वे क्या समझेंगे।'—मैंने भगवान्‌को स्मरण किया।

इतनेमें देखता हूँ तो दो इक्के आकर बगीचेमें खड़े हो गये। साथमें एक सज्जन थे। उन्होंने कहा, 'बाबू बालमुकुन्दजीके यहाँ प्रसाद था। उन्होंने आपके लिये भेजा है।' मैं जिस बगीचेमें रहता था, वह उन्हींका था, वे मेरे प्रति बड़ा स्नेह रखते थे। मैंने देखा—कई तरहकी मिठाई, पूरी, नमकीन, साग, अचार, सूखा मेवा, फल पर्याप्त मात्रामें हैं। मेरी प्रसन्नताका पार नहीं। मैंने मन-ही-मन कहा—भगवान्‌ने कैसी सुनी। उन्हीं इक्कोंको पूरे सामानसहित एक आदमी साथ देकर मैंने स्टेशन भेज दिया—कह दिया—जल्दी ले जाना, कहीं गाड़ी छूट न जाय। गाड़ी दस-पन्द्रह मिनट लेट आयी। सामान पहुँच गया। वे लोग एक दर्जनसे ज्यादा आदमी थे। सबने भरपेट भोजन किया। मेरा आदमी लौटकर आया। तबतक मुझे चिन्ता रही, कहीं गाड़ी छूट तो नहीं गयी होगी। आदमीने लौटकर सब समाचार सुनाया तो मेरे हृदयमें भगवान्‌के मंगल विधानके प्रति महान् विश्वास हो गया। कैसा सुन्दर विधान है? मुझे जरूरत पौने पाँच बजे हुई, तार अभी मिला। परंतु उस जरूरतको पूरी करनेकी तैयारी कहीं बहुत पहले हो गयी और ठीक जरूरतके समयपर सामान पहुँच गया। सामान भी इतना कि जिससे इतने लोग तृप्त हो गये। मुझे तो पता भी नहीं था कि कितने आदमी खानेवाले हैं। इक्के भी साथ आ गये—जिससे सामान स्टेशनपर भेजा जा सका। ठीक समयपर सामान पहुँचा। एक घंटे बाद पहुँचता, तब भी इस काममें नहीं आता और दो-एक घंटे पहले पहुँच गया होता तो उसे दूसरे काममें ले लिया जाता, इस कामके लिये नहीं बचता।

इससे सिद्ध होता है कि कोई ऐसी सदा जाग्रत् रहकर व्यवस्था करनेवाली अचिन्त्य महान् शक्ति है, जो आगे-से-आगे यथायोग्य व्यवस्था करती रहती है—और वही शक्ति जगत्‌का संचालन करती है। उसके मंगल विधानके अनुसार सब कार्य सुव्यवस्थितरूपसे होते रहते हैं। जो स्थिति अब सामने आती है, उसकी तैयारी बहुत पहले हो जाती है। मनुष्य उस परम शक्तिपर विश्वास करे, निश्चिन्त रह सके तो भगवान्‌की सेवाके भावसे सब कार्य करता हुआ भी वह सदा सुखी रह सकता है।

## प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय

जगमें जो कुछ भी है मिलता—कीर्ति-अकीर्ति, मान-अपमान।
धन-दारिद्र्य, शुभाशुभ, प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, लाभ-नुकसान॥
जन्म-मृत्यु, आरोग्य-रोग, सब ही निश्चित हितपूर्ण विधान।
रचते मंगलहेतु ज्ञानमय सुहृद-शिरोमणि श्रीभगवान्॥
विश्वासी अति भक्त नित्य संतुष्ट बना रहता यह जान।
हर स्थितिमें पाता वह मंगलमय प्रभुका संस्पर्श महान॥
हर्ष-विषादरहित वह रहता सदा परम आनन्द-निमग्न।
चित्त-बुद्धि सब रहते उनके नित्य सतत प्रभुमें संलग्न॥
प्रभुका अतिशय प्रिय वह होता, परम दिव्य समता-सम्पन्न।
होता उसके उरमें प्रभुका नित्य नवीन प्रेम उत्पन्न॥
एकमात्र प्रभुमें होती उसकी अनन्य ममता एकान्त।
हो जाता दुर्लभ फिर उसका परम भागवत जीवन शान्त॥

# मरणोपरान्तकी क्रिया

( श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास )

जो यह मानता है कि यह शरीर ही आत्मा नहीं है, बल्कि जीवात्मा शरीरसे भिन्न है। उसके लिये जब एक जीवात्मा शरीर छोड़कर जाता है, तब उस जीवात्माकी दो गतियाँ होती हैं—मुक्ति या दूसरे देहकी प्राप्ति।

शास्त्रकी बात अलग रखें तो भी शरीर और उसमें रहनेवाला जीवात्मा पृथक् है—ऐसा युक्तिसे भी मानना पड़ता है। शरीर ही जीवात्मा होता तो मृत्युको प्राप्त होनेपर शरीरका वह मुर्दा पड़ा ही रहता है, फिर भी सब कहते हैं कि मनुष्य मर गया। शरीर और शरीरमें रहनेवाला दोनों अलग-अलग हैं।

शरीरको छोड़कर जानेवाला जीव यदि मुक्त हो गया हो तो उसके पीछेसे उसके लिये जो क्रिया की जाती है, उससे न तो उसको लाभ होता है तथा न हानि ही होती है। शरीर छोड़कर गये हुए जीवने मुक्ति पायी या दूसरा शरीर धारण किया, इसका निश्चय साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। इसलिये मरनेवालेके पीछे उसके कल्याणके लिये उसके सगे-सम्बन्धी जो कुछ क्रिया करते हैं, उससे मरनेवालेको लाभ ही होता है।

जैसे विभिन्न डाकघरोंमें काम करनेवाले विभिन्न मनुष्योंके रहनेपर भी जिम्मेवारी एक आदमीकी होती है या सर्व-सामान्यकी होती है, उसी प्रकार जगत्में विविध प्राणियोंके कार्यकी जवाबदेही एक परमात्मापर होती है या सर्वसामान्यकी होती है। जो सबमें व्याप्त, सब स्थलोंमें व्यापक, सर्वशक्तिमान्, अनादि, अनन्त, सर्वत्र सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला, सर्वेश्वर, सबका नियन्ता है—वही परमात्मा है। जैसे मनुष्य चाहे जिस देशका—गाँवका निवासी हो, उस गाँवके पोस्ट ऑफिसमें डाकसे मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजनेपर उसको वहाँसे वे रुपये मिलेंगे ही। इसी प्रकार मरनेवाला प्राणी चाहे जहाँ हो और चाहे जिस योनिमें हो, उसके निमित्त जो सुकृत्य परमात्माके विधानद्वारा किया जाता है, वह उसको मिलता ही है।

जिससे दूसरोंको सुख-शान्ति हो, उसे 'पुण्य' कहते हैं और जिससे दूसरोंको दुःख तथा अशान्ति हो, उसका नाम 'पाप' है।

मरनेवाले मनुष्यके पीछे कोई भी उपस्थित अधिकारी, जीवके सुख, शान्ति तथा आनन्दके लिये जो कुछ करता है, मरनेवाला प्राणी उसके पुण्यफलका भागी होता है। उस कार्यमें करनेवाले व्यक्तिकी पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये।

मरनेवालेके पीछे होनेवाली क्रियाका मुख्य आधार श्रद्धा है। श्रद्धा ही उसमें फलवती होती है। मनीआर्डर भेजनेवालेके पास रुपये पहुँचनेकी पहुँच आती है। मरनेवालेके पास क्रियाका फल पहुँचनेकी पहुँच नहीं आती। यदि ईश्वरमें श्रद्धा है, उसको सर्वत्र व्यापक, सबका नियन्ता और सर्वशक्तिमान् मानते हो तो मरनेवालेके पीछे उसके निमित्त की गयी क्रियाका फल उसको मिलेगा, यह अवश्य मानना चाहिये।

परदेशमें बसे हुए पुत्रको देनेके लिये हम एक किताब वहाँ जानेवाले किसी सज्जनके हाथ श्रद्धापूर्वक देते हैं और मानते हैं कि 'वह दे देगा; क्योंकि वह गुणी है।' परमात्मा उसकी अपेक्षा अनेकगुना अधिक गुण और शक्तिसे युक्त है, वह सबकी विशेष श्रद्धाका पात्र है। उसको हम श्रद्धापूर्वक जो कुछ देंगे, उसे वह जरूर उस जीवके पास पहुँचा देगा। यह प्रयोग श्रद्धाका है, इसी कारण इसको 'श्राद्ध' कहते हैं।

श्राद्ध पैसोंसे ही हो, ऐसी बात नहीं है, जिसके पास पैसे हों, वह पैसोंसे अनेक प्रकार दान करे। विधिपूर्वक करे। धन न हो तो शुद्ध विचारसे परमात्माकी भक्तिपूर्वक प्रार्थनाके द्वारा करे।

डाकमें तो मनीआर्डरके रुपये तथा उनके डाकमहसूल दिये बिना रुपये नहीं भेजे जाते, पर परमात्मा तो दीनदयालु हैं; जिसके पास धन नहीं होता, वस्तु नहीं होती और वह मनुष्य यदि परमात्मासे इतना ही कह देता

है कि 'हे प्रभो! हमारे अमुक सम्बन्धीका जिसमें कल्याण हो, वही करो' अथवा 'वह जिस योनिमें हो, वहाँ उसको सुख, सम्पत्ति और शान्ति मिले' तो ऐसी प्रार्थना करनेसे भी प्रभु उस जीवको वह वस्तु प्रदान करते हैं। ऐसा करनेवालेमें भक्ति, श्रद्धा अवश्य होनी चाहिये।

श्रद्धासे होनेवाले इस श्राद्धमें, जिसका प्रसंग शास्त्रमें है, बहुत विशाल दृष्टि है। एक मृतकके लिये श्राद्धक्रिया करते समय उस क्रियामें इस प्रकारके संकल्प आते हैं कि 'हे प्रभो! प्राणिमात्र, देव, ऋषि, पशु-पक्षी सारे जीव तृप्त हों, सभी सुखका अनुभव करें।'

मरनेवालेके पीछे होनेवाली क्रियामें इतर जीव गौण हैं और मृतक प्राणी मुख्य है। इसलिये मरनेवालेके पीछे विधि और श्रद्धापूर्वक शुभ विचारयुक्त परमेश्वरप्रीत्यर्थ जो कुछ दान, पुण्य, तर्पण आदि किया जाता है, वह मृतक प्राणीको अवश्य मिलता है।

इसपर कुछ लोग कहते हैं कि तालाबसे बाहर डालनेपर पानी जैसे दूर खेतमें संकल्प करनेपर भी नहीं पहुँचता, उसी प्रकार यहाँ किया हुआ शुभ कर्म कोसों दूर जीवको कैसे मिलेगा? यह दलील वितण्डावादकी है। जैसे घरमें बैठे मनुष्यकी बात उसका पड़ोसी नहीं सुन सकता, पर वही बात टेलीफोनके द्वारा की जाय तो दूर-अतिदूरका मनुष्य भी सुनता है, उसी प्रकार यहाँ की जानेवाली क्रिया परमात्माके विधानद्वारा होनेपर अवश्य फल देती है।

डाकघरमें काम करनेवाले कर्मचारीको हम व्यक्तिगतरूपसे रुपये देते हैं तो उसका उत्तरदाता वह मनुष्य होता है, डाकविभाग नहीं; परंतु यदि उसी कर्मचारीको डाकद्वारा भेजनेके लिये रुपये दिये हों और उसकी रसीद ले ली हो तो उन रुपयोंका उत्तरदाता डाकविभाग है। उसी प्रकार यहाँ दिया हुआ प्रत्येक दान या कोई भी शुभ कर्म इस जगत्के मनुष्यको ही अर्पण किया हो तो इस जगत्का मनुष्य ही उसका बदला देता है, जो अल्प होता है, परंतु वही यदि घट-घटमें व्यापक परमात्माको समर्पण किया गया हो तो उसके फलदाता भगवान् होते हैं। एक ही क्रिया और उतना ही व्यय, फिर भावके भेदसे फलमें बड़ा भेद होता है। इसलिये मृतकके पीछे जो कुछ भी किया जाय, सब ईश्वरार्पण कर दे। इसी आधारपर भगवान्ने गीतामें कहा है कि जो कुछ खाये, जो होम करे, जो दान दे, जो तप करे, जो कुछ भी करे—सब मुझको अर्पण करे। इसीलिये श्राद्धमें ईश्वरार्पण और श्रद्धा-बुद्धिकी अतिशय आवश्यकता है। उन दोनोंके बिना जो श्राद्ध होता है तथा देखा-देखी, लोकलाजसे, लोकमें यशके लिये, बिना समझे होता है, उसका फल कर्ताकी इच्छा और पुरुषार्थके अनुसार ही होता है। जिसको दान देना हो, जिसको भोजन कराना हो, जिसको तृप्त करना हो, उसको श्रद्धा और पूर्णभावके साथ आदर-सत्कारसे सन्तुष्ट करे। प्राणीकी अन्तरात्मा तृप्त होती है, तभी परमात्मा तृप्त होते हैं।

इसीसे शास्त्रमें बार-बार पुकारकर कहा गया है कि श्राद्धमें बहुत आदमियोंको भोजन न कराये, सगे-सम्बन्धीको, वैद्य-ज्योतिषीको, अपना उपकार करनेवालेको, बदला चुकानेवालेको भोजन न कराये। जो भक्त हो, जिसकी परमात्मामें प्रीति और भक्ति हो, उसको सन्तुष्ट करे।

ऐसे ब्राह्मण न मिलें तो क्या क्रिया ही न करे? नहीं, क्रिया अवश्य करे। भगवान्ने ही इसका निर्णय कर दिया है कि जो प्राप्त हों, उन्हींमें अच्छे निर्दोष देखकर, सर्वांगपूर्ण न हो तो भी उसमें ईश्वरार्पणबुद्धि करे। ऐसा करनेपर फिर पात्र-अपात्रका प्रश्न नहीं रहता। चेतन-दृष्टि करे, शरीर-दृष्टि न करे। मन्दिरमें बैठकर देवताको नमस्कार करनेवाला देवताको ही देखता है। मन्दिर और पुजारीपर दृष्टि नहीं रखता। इसी प्रकार प्राणिमात्रमें रहनेवाले चेतन परमात्मापर दृष्टि रखकर मृतकके नामपर शुभ कर्मरूपी श्राद्ध करे तो वह अवश्य फलदायी है।

कुछ नहीं तो, मनुष्यको तर्पण अवश्य करना चाहिये। इस तर्पणकी युक्ति श्रेष्ठ और बहुत सुन्दर है। जगत्में मनुष्य बहुत-सी वस्तुएँ, भोगपदार्थ प्राप्त करता

है तृप्त होनेके लिये। भोजन, वस्त्र, स्त्री, पुत्र, परिवार, सभी जीवकी तृप्तिके लिये है। इस तर्पण-विधिमें तृप्त करनेकी विधि है। मृतक तृप्त हो, यह भावना है। तर्पण करनेवालेको अपने चित्तसे यह संकल्प करना चाहिये और इस संकल्पसे इस प्रकार अवश्य होगा, यह मान लेना चाहिये। अन्तःकरणका संकल्प शुद्ध और सच्चे भावका होता है तो वह अवश्य फल देता है।

जादूगरका संकल्प कंकड़को रुपया दिखलानेका होता है और वह फलता है। हिप्नाटिज्मवाला मोमबत्तीको केला बनाकर दिखलाता है और खिलाता है, वह भी फलता है। तो फिर शुद्धभावसे मृतकके लिये किया हुआ शुभ संकल्प क्या नहीं फलेगा? संकल्पमें बल है।

अहमदशाह बादशाहके कालमें अहमदाबादका किला बन रहा था। वहाँ अहमदाबादमें माणिक नामका एक साधु रहता था। किला दिनमें बनता और रातमें गिर जाता। माणिक साधु दिनमें गुदड़ीमें टाँके लगाता और रात पड़ते ही उन टाँकेको कट-कट तोड़ डालता। बस, उसी क्षण किला धड़ाधड़ गिरने लगता। बादशाहने पता लगाया तो मालूम हुआ कि किलेके गिरनेमें कारण माणिक साधु है। बादशाहने उसको मनाया और कहा कि मैं तुम्हारा नाम रखूँगा। यह चौक माणिकचौक कहलायेगा। तुम किला बनने दो।

चित्तके संकल्पमें अतिशय बल है। वासनाओंके कारण यह चित्तका बल नष्ट हो जाता है। चित्तकी वृत्तियोंको भोगोंसे हटाकर उसके बलको एकत्र किया जाय तो चित्तका संकल्प बहुत उपयोगी हो सकता है।

जीते-जी मनुष्य अपने बाल-बच्चे और कुटुम्बके मोहसे अपने धनको, जो पुण्यमें लगानेसे साथ जाता है, पुण्यकार्यमें खर्च नहीं कर सकता और सब छोड़कर मर जाता है। उस धनके मालिक बने हुए उसके पुत्र आदि यदि उसमेंसे यथाशक्ति कुछ धन खर्च करके मृतकके भावी जन्ममें सहायता करते हैं, तो वे पुत्रादि निश्चय ही पितृ-ऋणसे मुक्ति पाते हैं। अशुभ कर्म करनेवाले पिताको शुभ कर्म करनेवाला उसका पुत्र तार सकता है। हिरण्यकशिपुको प्रह्लादने तार दिया था। जैसे डूबते बालकको उस्ताद तैराक स्वयं तैरकर तार सकता है, उसी प्रकार पिताको पुत्र तार सकता है। जैसे गंगाके प्रबल प्रवाहको नहरवाले मजबूत बाँध बाँधकर फेर सकते हैं; उसी प्रकार पुत्र प्रबल शुभ कर्म या पुरुषार्थसे पिताकी सद्गति कर सकता है। प्रत्येक मनुष्य अपने सम्बन्धीकी शुभ गति कर सकता है।

यह क्रिया उसे अपनेको संकटमें डालकर, कर्ज लेकर, जायदाद बेचकर नहीं करनी चाहिये। संसारमें कीर्ति कमानेके लिये भी नहीं करनी चाहिये। कुछ भी साधन न हो तो संकल्पमात्र ही किया करे, इसका भी फल होता है।

जैसे वादी एक-दो और साढ़े तीन कहकर वस्तु निकालता है। उसमें जैसे एक-दो और साढ़े तीन कोई वस्तु नहीं निकलती। इन शब्दोंके कहते समय वह जो चाहता है, वही वस्तु निकलती है। वही वादी यदि ये शब्द नहीं बोलता है तो भी वस्तु निकलती है। उसी प्रकार श्राद्धमें संकल्प मुख्य विचार है। तथापि तर्पण आदि क्रिया उसमें आवश्यक वस्तुएँ हैं। कुश क्यों, तर्पण क्यों, भातका पिण्ड क्यों—इन सारे तर्कोंको समझानेके लिये बहुत विस्तार करना पड़ेगा। पाठक इतना ही समझ लें कि जिस समय यह क्रिया व्यवहारमें आयी, उस समय शास्त्र बहुत उच्च कोटिपर था। इसलिये जिन-जिन वस्तुओंकी उसमें योजना की गयी है, वे खास जरूरी हैं। इसलिये यदि जिज्ञासु श्रद्धापूर्वक इनका अनुष्ठान करेगा, तो उसको स्वयं फलकी अनुभूति होगी। इससे उसीको यह दिखायी देगा कि उसकी क्रियासे मृतकको अवश्य लाभ हुआ है।

परंतु इस क्रियाको लोभी, मूर्ख, ढोंगी, धूर्त, लालची, झूठे, दुराचारी तथा अभक्त ब्राह्मणके द्वारा न कराये। हो सके तो अपने-आप करे, नहीं तो किसी श्रद्धालु, भक्त, सत्यवादी ब्राह्मणके द्वारा कराये। किसी पुराने इतिहासमें द्वादशाह या कोई बड़ा भोज किसी

मृतकके आदमीके पीछे किया गया हो, यह पता नहीं चलता। परंतु मृतकके पीछे श्राद्ध और तर्पण सबने किये हैं। ये ग्रामभोज आदि तो सब ख्यातिके लिये किये जाते हैं, इससे मृतकके कल्याणसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिसके हृदयमें मृतक पुरुषके हितका सच्चा भाव हो, उसे तो शास्त्रके अनुसार विधिपूर्वक तर्पण-श्राद्ध करने चाहिये।

शक्ति हो तो मृतकके लिये दान-पुण्य करे, यह कोई बुरी बात नहीं है; परंतु वह सच्चा दान-पुण्य होना चाहिये। भीतर जैसी भावना रहेगी, वैसा ही फल होगा। भीतर कुछ भावना रखकर मुँहसे कुछ और ही बोले तो उसको फल तो भीतरकी भावनाके अनुसार ही होगा।

मृतककी मरण-तिथिपर, जहाँतक हो सके, संक्षेपमें श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त विधिसे दीन, दुखी, बालक, साधु, ब्राह्मणको अन्न-वस्त्र और जलसे सन्तुष्ट किया जाय तो वह लाभप्रद है। विस्तार करनेसे श्रद्धा टूटती है। इसलिये जहाँतक हो, संक्षेपमें करे। शास्त्रमें तो एक या दो ब्राह्मणोंके लिये कहा गया है।

जब शास्त्र पढ़ते हैं तो रोमांच हो जाता है। श्राद्धके शास्त्रकी भी यही बात है। शास्त्रानुसार श्राद्ध करनेवाला अवश्य ही मृतकको तारता है। हिरण्यकशिपुको मारकर नृसिंह भगवान् प्रह्लादसे कहते हैं कि 'हे पुत्र! तुम अपने पिताकी मृत्युके पीछेकी सारी क्रिया करो।' यादवोंने भी यादवस्थलीमें अपने सबके मरनेके बाद उनकी क्रिया की थी। दशरथकी क्रिया श्रीरामने की। अनेकों कष्ट उठाकर जन्म देनेवाले, पालनेवाले, ज्ञान-शक्ति और भक्ति देनेवाले माता-पिताके पीछे मुफ्त मिलनेवाले जलसे भी जो पुत्र तर्पण नहीं करता, तो जान लो कि वह पुत्र या तो मूर्ख या अज्ञानी है अथवा कुपुत्र है।

मरणोपरान्त की जानेवाली इन शास्त्रोक्त क्रियाओंके साथ रूढ़ि—रिवाजोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। बुरे रिवाजोंके कारण शास्त्रविधि बुरी नहीं हो जाती।

श्राद्धमें श्रद्धा, शास्त्रविधि और मनकी शान्त स्थितिसे उत्पन्न होनेवाला संकल्प बहुत ही जरूरी है। मरनेके बाद होनेवाली सारी क्रियाको मुख्यतः 'श्राद्ध' शब्दसे शास्त्रोंने अभिहित किया है।

श्राद्धके मन्त्रों और वाक्योंका अर्थ समझ लिया जाय तो अच्छा है। इसलिये श्राद्ध करनेवालेको श्राद्ध करानेवालेसे वहाँ बोले जानेवाले मन्त्रोंका अर्थ जान लेना चाहिये। श्राद्ध कराते समय करानेवाला ब्राह्मण बारंबार पैसा न माँगे। कर्मके बीचमें पैसा माँगना लोभमूलक है। कर्मसे अन्तमें श्रद्धालु पुरुष श्राद्ध करानेवाले ब्राह्मणको यथाशक्ति दक्षिणासे अवश्य सन्तुष्ट करे। परिश्रमका फल सभी चाहते हैं। श्रद्धासे जो कुछ होता है, वह सब फलता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे जो होता है, वह सब फलता है। अश्रद्धासे किये हुएका फल न यहाँ होता है, और न परलोकमें ही होता है।

कर्ममात्रके दो फल हैं—एक सामान्य फल, दूसरा विशेष फल। विशेष फल जैसी-जैसी तीव्र भावना होती है, उसीके अनुसार होता है।

जीवित मनुष्य दूर होनेपर भी संकल्पके बलसे एक-दूसरेका हित-साधन कर सकते हैं। जैसे बेतारके तारका स्टेशन एक-दूसरोंके आन्दोलनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार सहृदयी, हितैषी, निष्पाप और परस्पर हृदयसे हितकी चाहना करनेवाले सगे-सम्बन्धियोंका चित्त बेतार-के-तारका स्टेशन-जैसा है। उनके निर्मल और प्रेमी चित्त एक-दूसरेकी हितकामनाके विचारोंके आन्दोलनको ग्रहण करते हैं। संसारमें चित्त ही भोग और मोक्ष उत्पन्न करनेकी क्षेत्रभूमि है। चित्तमेंसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है। इसलिये प्रत्येक सगे-सम्बन्धियोंको चाहिये कि अपने जीवित या मृतक सगे-सम्बन्धी, हितैषी, शत्रु-मित्र, जगत्के जीवमात्रके लिये हृदयके निर्मल भावसे शुभ कामना करे। प्रतिदिन सबका शुभ हो, ऐसी इच्छा निर्मल और निष्पाप चित्तसे बारंबार जगत्को प्रदान करता रहे।

*साधकोंके प्रति—*

# शरीरसे अलगावका अनुभव

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

भगवान्‌ने मनुष्योंको कल्याणकी सामग्री बहुत दी है और उम्र भी बहुत ज्यादा दी है। मिनटोंमें—थोड़े समयमें कल्याण हो जाय, उसके लिये वर्षोंकी बहुत उम्र दी है। विचार-शक्ति भी बहुत दी है। सब सामग्री इतनी दी है कि मनुष्य कई बार अपना कल्याण कर ले, जबकि एक बार कल्याण होनेके बाद दूसरी बार कल्याण करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। बहुत विचित्र-विचित्र सामग्री भगवान्‌ने मनुष्यको दी है। जैसे, एक यह सीधी बात है कि बचपनसे आजतक आपको यह पक्का ज्ञान है कि देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति सब बदली है और मैं वहीं हूँ। मैं तो वही हूँ, पर शरीर वैसा नहीं है, साथी वैसे नहीं हैं। जो बदले हैं, उनको छोड़ दें और जो नहीं बदला है, उसको पकड़ ले तो अभी बेड़ा पार है, अभी, अभी इसी क्षण। जो बदलता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है और जो नहीं बदलता है, वह मेरा स्वरूप है; बस, इतना ही काम है।

अनेक परिस्थितियोंके बीच आप एक हैं। अनेक घटनाओंके बीच आप एक हैं। अनेक देशोंमें घूम-फिर कर भी आप एक रहते हैं। बहुत समय बीतनेपर भी आप वही रहते हैं। सब कुछ बदलनेपर भी आप वही हैं। उस बदलनेवालेसे अपनेको आप अलग करके देखें, तो अभी मौज हो जाय। अपनेको अलग करके देखना तत्त्वज्ञान हो गया और बदलनेवालेको साथ मिलाकर देखना अज्ञान हो गया।

साधन करनेवाले भाई-बहनोंके मनमें एक बात आती है कि मेरा मन निर्विकार हो जाय। दुःख-सुखकी घटनाका मेरे मनपर असर न पड़े। अनुकूलता और प्रतिकूलताका असर न पड़े। यदि ऐसी मनकी अवस्था हो जाय तो तत्त्वज्ञान हो गया और यदि मनपर असर पड़ता है तो तत्त्वज्ञान नहीं हुआ। इस वास्ते इस बातको आप ठीक तरहसे समझें कि असर किसपर पड़ता है? मनपर पड़ता है, बुद्धिपर पड़ता है, शरीरपर पड़ता है, इन्द्रियोंपर पड़ता है। जैसे—रुपये आये, नफा हुआ तो आपके मनमें प्रसन्नता हुई। रुपये चले गये, घाटा लग गया तो आपका मन दुखी हो गया। मनमें नफा-नुकसान होनेसे दो तरहका असर हुआ, पर आप तो वही रहे। नफा हुआ तो आप दूसरे थे क्या? नुकसान हुआ तब आप दूसरे हो गये क्या? अगर आप एक नहीं रहते तो नफा-नुकसान दोनोंका ज्ञान किसको होता? आप तो सम ही रहते हैं, एक ही रहते हैं। आपपर असर पड़ा ही नहीं। असर पड़ता है, मन-बुद्धिपर।

शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि—ये सब बदलनेवाले हैं। इनपर यदि कोई असर पड़ गया तो क्या हो गया। ये बदल गयीं तो क्या हो गया। आप उसके असरसे अपनेको सुखी-दुखी मानते हो, यही गलती होती है। इतनी बातपर दृढ़ रहो कि मैं वही हूँ। सुखके समयमें जो था, वही दुःखके समय भी हूँ। अपने-आपमें स्थित रहना ही 'स्वस्थ' होना है, अर्थात् 'स्व' में स्थित होना है। सुखी-दुखी होना प्रकृतिमें स्थित होना है। प्रकृतिमें स्थित होनेसे सुख-दुःखके भोगमें हेतु होना पड़ता है। क्यों? इसलिये कि आप प्रकृतिमें स्थित हो जाते हैं अर्थात् शरीर, इन्द्रियों, मन-बुद्धिपर जो असर होता है, उसे आप अपनेपर असर होना मान लेते हैं। आप जानकर प्रकृतिमें स्थित होते हैं। आप उसमें स्थित हैं नहीं। आप न सुखमें हैं, न दुःखमें, न लाभमें हैं, न हानिमें। न किसीके जन्ममें हैं, न किसीके मरणमें। आप सदैव इन सबसे अलग हैं। आप जान-बूझकर अपनेको उसमें खींच लेते हैं और सुखी-दुखी हो जाते हैं और कहते हैं कि 'साहब! बोध नहीं हुआ।' बोध करना चाहते हो तो—जो आप वही रहते हैं, बस, इस बातमें स्थित रहो। इसको कहते हैं—**'समदुःखसुखः स्वस्थः।'** 'स्व' में स्थित हो गये, बस! 'स्व' सदा ही निर्विकार है। 'स्व' में कभी विकार होता ही नहीं। विकार अन्तःकरणमें होता है, उसके साथ मिलकर आप अपनेको विकारी मान लेते हो और सुखी-दुखी होते हो।

कभी-कभी मुझे बहुत बड़ा भारी आश्चर्य लगता है कि कहाँ गाड़ी अटकी हुई है? पापकर्म करनेकी बात मैं कहता ही नहीं। जो लोग सत्संग करते हैं—वे पाप करते हैं, ऐसा मेरे मनमें आता ही नहीं। आप सत्संगमें आये हो सत्संग सुननेके लिये, भजन-ध्यान करनेके लिये, कल्याण

करनेके लिये; फिर भी आप पाप ही करो तो यहाँ क्यों आये हो? पाप कभी भूलकर भी नहीं करना चाहिये। जिसको अन्याय समझते हो, उसको स्वप्नमें भी मत करो। अपनी तरफसे पापका विचार ही छोड़ दो। आपके मनमें गन्दी स्फुरणा आ गयी, अच्छी स्फुरणा आ गयी, बुरी आ गयी, शोक आ गया, चिन्ता आ गयी, हर्ष हो गया, कहीं राग हो, गया, कहीं द्वेष हो गया—ये ही तो होते हैं? ये होनेपर भी आप अपनेमें स्थित रहो, उनसे मिलो मत। उनके साथ मिलते हो, यह प्रकृतिस्थ होना है। प्रकृतिके साथ मिले रहनेसे पाप भी लगेगा, जन्म-मरण भी होगा, दुःख भी होगा, सब कुछ होगा—'**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।**' (गीता १३। २१)।

चीजें बनती हैं, पदार्थ आते हैं, जाते हैं। उनको देखकर भी आप अपनेमें ही स्थित रहो, क्योंकि आप उनको देखेनेवाले हो। देखनेवाला दीखनेवाली वस्तुओंसे अलग होता है—यह नियम है। सुखदायी परिस्थितिको भी आप देखते हो और दुःखदायी परिस्थितिको भी आप देखते हो। संयोगको भी आप देखते हो। वियोगको भी आप देखते हो। देखनेवाले आपमें क्या अन्तर पड़ा? देखनेवाले आप तो वही रहे।

मान लो, हम गंगाजीके किनारे खड़े हैं। बहुत-से सिलपट (काठके टुकड़े) बहते हुए आ जायँ, उनको देखकर हम खिल-खिलाकर हँस पड़ें और मनमें सोचें कि बहुत आनन्द हो गया। दूसरे दिन वहीं खड़े रहे और सिलपट एक भी न आये, उधरसे बह जाय, अब हम जोर-जोरसे रोने लगें। कोई पूछे कि 'भाई, क्यों रोते हो?' तो हम कहें कि 'भाई, आज एक भी सिलपट हमारे पाससे बहकर नहीं गया। सब-के-सब उधरसे बहकर चले गये।' अब जरा विचार करो कि अपनेमें क्या फर्क पड़ा? सिलपट इधर आकर बह जाय तो क्या? तुम तो उन्हें छूते नहीं। तुम्हारे पास वे रहते नहीं। वे तो बहते हैं और तुम खड़े हो। पासमें आकर सिलपट बह गया तो तुम खुश हो गये। दूरसे बहकर चला गया तो रोने लग गये—यह मूर्खता ही तो हुई!

ऐसे ही बेटेका जन्म हुआ तो आप प्रसन्न हो गये, बेटा मर गया तो रोने लग गये। किसी दूसरेके भी लड़का हुआ और मर गया, पर आप न तो उसके जन्म लेनेपर प्रसन्न हुए, न मरनेपर रोये। धन उसके हो गया और चला गया, आप नहीं रोये। आपके होकर चला गया तो रोते हो। 'क्यों रोते हो भाई? आपके पास पहले था नहीं, बीचमें हो गया, फिर चला गया। आप तो जैसे पहले थे, वैसे हो गये, तब रोना किस लिये?'

आपको कुछ भी स्पर्श करता नहीं। आप अपनेमें स्थित रहो, रोओ क्यों? आप बहनेवाली घटनाओं, परिस्थितियों, पदार्थों, व्यक्तियोंसे चिपकोगे तो रोओगे मुफ्तमें। संसारका दुःख मुफ्तमें आपने पकड़ रखा है, उड़ता तीर अपनेपर ले रहे हो। भगवान्‌ने दुःख पैदा किया ही नहीं, दुःख है ही नहीं। आप स्वयं दुःख पैदा कर लेते हो। पता नहीं, आपको क्या शौक लगा है? आप बदलने-वालेके लिये मिलो मत। भले ही बदलनेवालेके साथ एकता दीखती रहे, पर उसके साथ आप मिले नहीं। मैं उससे अलग हूँ—ऐसा देखो। जहाँ अलगावका ज्ञान साफ हुआ कि विकार मिट जायँगे। मिले रहोगे तो विकार रहेंगे।

प्रश्न—स्वामीजी! हम मिले हुए तो हैं, इससे अलग कैसे हों?

उत्तर—आप मिले हुए हो ही नहीं। यदि आप मिले हुए होते तो आप भी बचपन, जवानी, बुढ़ापेके साथ बदलते। आप तो कहते हो कि 'मैं वही हूँ, पर बचपन चला गया, जवानी चली गयी, बुढ़ापा आ गया, आप तो वही रहे। आप अलग हो, तब तो आप वही रहे? आप तीनोंको जानते हो। जाननेवाला जाननेमें आनेवाली अवस्थाओंसे अलग होता है तो आप अलग हुए कि एक हुए? मिले हुए आप हो नहीं, जानते हो कि मिले हुए नहीं हैं। फिर भी अपनेको मिले हुए मानते हो। बस, आजसे इसको मत मानो।

प्रश्न—कैसे नहीं मानें? हमें तो मिला हुआ दीखता है?

उत्तर—आप दीखनेवालेको आदर मत दो, अपने अनुभवको आदर दो। गीताजीके वचनोंका आदर करो कि हम अलग हैं। चाहे घुला-मिला दीखे, साक्षात् मिला हुआ दीखे, परंतु मैं इनसे अलग हूँ—इतना मान लो। प्रत्यक्ष अनुभव है कि बचपनसे आजतक शरीर बदला है, पर मैं वही हूँ। इस अनुभवके आधारपर यह मान लो कि शरीर अलग है, मैं अलग हूँ। यदि फिर भी ठीक अनुभव न हो तो व्याकुल होकर भगवान्‌से

कहो—'महाराज, मुझे ऐसा अनुभव नहीं हो रहा है।' इतनी बात पक्की जान लो कि 'हूँ' तो अलग ही। यदि अलग न होता तो मरनेपर शरीर यहाँ नहीं रहता, साथमें जाता अथवा शरीरके साथ मैं यहाँ रहता। न आप शरीरके साथ रहते हो और न आपके साथ शरीर जाता है। तो एक कैसे हैं? दो हुए कि नहीं? जैसे, मैं मकानमें रहता हूँ तो मैं और मकान एक कैसे हो गये? मैं मकानसे अलग चला जाता हूँ तो मकान और मैं दो हुए न? ऐसे ही शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि मकान हैं। आप इसमें रहनेवाले हो, रहते हो और निकल भी जाते हो। आप इसके साथ एक नहीं हो। एकता आपकी मानी हुई है। यह आप सबका अनुभव है।

जैसे, आप स्वस्थ होनेके लिये कड़वी दवा चिरायता, कुटकी आदि आँख भींचकर पी लेते हो, ऐसे ही वास्तविक स्वस्थ होनेके लिये 'मैं अलग हूँ'—इस दवाईको पी लो। फिर भी अलग न दीखे तो व्याकुल हो जाओ। जोरदार व्याकुलता होगी तो चट अलगावका अनुभव हो जायगा। भोगोंमें रस लेते रहे, सुख भोगते रहे तो कितना भी पढ़ जाय, पण्डित बन जाय, चारों वेद पढ़ जाय, पर कभी शरीरसे अलगावका अनुभव नहीं होगा। व्याकुल हो जाओ कि ऐसा अनुभव जल्दी-से-जल्दी कैसे हो? तो आपको घुला-मिला दीखना बन्द हो जायगा; क्योंकि घुले-मिलेकी मान्यता भूल है। वह भूल अब नहीं करेंगे—ऐसा दृढ़ विचार करनेसे फिर इस भूलके मिटनेमें देरी नहीं लगेगी।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

# आसुरी खान-पान—रोगोंको निमन्त्रण

अभक्ष्य-भक्षण—**स्वास्थ्यविशेषज्ञ कहते रहें कि मांसाहारसे अनेक रोग होते हैं; किंतु आजके मानवकी जीभ मानती है? मांस, अण्डा, मछली और जाने क्या-क्या अल्लम-गल्लम।**

जिह्वाकी तृप्ति—**कछुए, मेंढक, घोंघे—पता नहीं क्या-क्या उदरमें भर लेता है आज मनुष्य। नाक-भौं सिकोड़ना व्यर्थ है। आजके बड़े-बड़े होटलोंका बावर्चीखाना देखा है कभी? और चर्बी—किसकी चर्बी उपयोगमें आ रही है, इससे कहाँ किसीको मतलब है।**

**मानवता-शुद्धाचार शुद्ध विचारकी पुकार; किंतु पुकारका क्या अर्थ है, जब मनुष्यका आहार ही अपवित्र है। रक्त, मांस, मन-बुद्धिका निर्माण वायुसे तो होनेसे रहा। आहारसे ही तो उन्हें बनना है और आजका आहार·····हाय!**

उच्छिष्ट—**'असभ्य—पिछड़े हुए लोग हैं वे, जो आजकी प्रगतिशील पार्टियोंमें योग नहीं दे पाते।' यह बात आपने भी सुनी होगी। आजकी प्रगतिशील पार्टियाँ—आहारकी प्लेटें एक-एक और सबके चम्मच पृथक्-पृथक्। चम्मचसे उठाइये और मुखमें डालिये। एक प्लेटमें सबके चम्मच—उच्छिष्ट-जूठा— यही सब तो पिछड़ेपनेकी बातें हैं!**

**ज्वरके रोगीके मस्तकपर सहानुभूतिका हाथ रखते भय लगता होगा कि ज्वर न चढ़ बैठे, रख भी दिया तो साबुनसे हाथ धोना चाहिये; किंतु सबका यह जूठा·····।**

**होटलोंमें तथा अन्य सार्वजनिक भोजनस्थानोंमेंसे अधिकांशमें ग्राहककी प्लेटका बचा भोजन उपयोग योग्य हो तो राशिमें चला जाता है।**

**स्वास्थ्यके नियम, सदाचारके नियम—लेकिन आजकी प्रगतिशीलता इधर देखने लगे तो प्रगति—मनुष्यकी यह तीव्रतम प्रगति पतनकी ओर है, यह दूसरी बात।**

अपवित्रता—**आजका सुशिक्षित स्वच्छ तो समझ पाता है, लेकिन पवित्र क्या? पवित्रताका अर्थ उसकी समझसे बाहर है।**

**अपवित्र स्थानपर, अपवित्र लोगोंद्वारा प्रस्तुत अभक्ष्य—अपवित्र भोजन वह स्वयं अपवित्र दशामें नित्य ही तो करता है। स्वच्छ कमरा, उजला मेजपोश, चमकते काँटे-चम्मच हों बस—वह स्वयं बिना हाथ धोये, जूता पहिने भोजन करेगा, अपवित्र भोजन करेगा, कुत्तोंके साथ बैठकर भोजन करेगा—करता ही है। यह आहार उसके मनको अपवित्र करता है—ठीक; किंतु मनकी पवित्रताकी उसे चिन्ता भी तो हो। ऐसेमें रोग हों तो क्या आश्चर्य!**

# श्राद्ध—क्या, क्यों, कैसे ?

( श्रीहितसुकृतलालजी गोस्वामी )

**गृहस्थके नित्य यज्ञ**—गृहस्थको अपने दैनिक जीवनमें अनेक कार्य करने पड़ते हैं और कहीं-न-कहीं रोजमर्राके कार्यके कारण जीव-जन्तुओंकी हत्या होती है। अहिंसाको जीवनका सर्वश्रेष्ठ मूल्य माननेवाले भारतीय ऋषियोंने गृहस्थको इन पापोंसे मुक्त करनेके लिये पाँच महायज्ञका विधान बनाया।

**पाँच महायज्ञ**—(१) अध्ययन, अध्यापन—**( ब्रह्मयज्ञ )**, (२) अन्न, जलद्वारा पितरोंका तर्पण—**( पितृयज्ञ )**, (३) देवताओंका नित्य होम—**( देवयज्ञ )**, (४) गाय, कुत्ता, कौआको अन्नदान—**( भूतयज्ञ )**, (५) अतिथियोंका सत्कार—**( मनुष्ययज्ञ )**।

**अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।**
**होमो दैवो बलिर्भौतौ नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥**

(मनुस्मृति ३।७०)

**प्रश्न**—हमारे किये हुए श्राद्धका फल (अन्न, जल) पितरोंको कैसे मिलेगा?

**उत्तर**—जिस तरह पिताका कमाया हुआ धन पुत्रको मिल जाता है, इसी तरह पुत्रका दिया अन्न, जल पिताको मिल जाता है। श्राद्ध ही पुत्रको अपने पिताकी सम्पत्तिका अधिकारी सिद्ध करता है।

**प्रश्न**—पितर आते हैं तो हमें दिखते क्यों नहीं?

**उत्तर**—जैसे देवयज्ञमें इन्द्रादि देवताओंकी पूजा की जाती है और उस पूजाका आधार अग्नि होती है, वैसे ही पितृयज्ञमें पूजनीय पितर होते हैं और होमकी अग्निके स्थानपर ब्राह्मणका मुख होता है।

**प्रश्न**—ये रहते कहाँ हैं?

**उत्तर**—परमात्माकी सृष्टिमें जैसे देवलोक आदि लोक हैं और उनके अधिष्ठाता इन्द्र आदि देव माने जाते हैं, वैसे ही पितृलोक भी एक स्वतन्त्र लोक है, जो दक्षिण दिशामें भूलोकके ऊपर चन्द्रमण्डलके अन्तर्गत तथा उसके आस-पास है। मनुष्य जैसे योगके प्रभावसे अदृश्य हो सकते हैं, वैसे ही पितृदेव भी अदृश्य, सूक्ष्मरूपमें आते हैं।

**प्रश्न**—ऐसा क्यों करते हैं, शरीरमें क्यों न आयें?

**उत्तर**—जिससे उनके वंशज उनकी ममतामें फँस न जायँ, फिर कार्य करनेमें बाधा आयेगी। निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें मृत पितृ वायुकी तरह प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसे पितृस्वरूप ब्राह्मणोंका ही श्राद्धकर्ता पूजन करता है।

**निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्।**
**वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥**

(मनुस्मृति ३।१८९)

**नोट**—श्रद्धापूर्वक मृत पुरुषोंके निमित्त यथाविधि जो कुछ ब्राह्मण-भोजन, पिण्डदानादि देशकाल और पात्र देखकर किया जाता है, वही वैदिक श्राद्ध-कर्म है।

**प्रश्न**—यदि श्राद्धमें पितर आकर भोजनका सारांश ग्रहण करते हैं, तो भोजनमें कुछ कमी क्यों नहीं आती है?

**उत्तर**—पितरोंमें ऐसी शक्ति है कि वे प्रदत्त भोजनका सार अंश ग्रहण करके भी उस वस्तुमें तनिक भी विकृति नहीं आने देते हैं। जैसे—

(१) हाथी कैथा फलको खाकर उसका सार ग्रहण कर लेता है।

(२) मधुमक्खियाँ फूलोंका सारांश ग्रहणकर उससे मधु तैयार कर देती हैं। फूलोंमें विकृति नहीं आती।

(३) हंस नीर-क्षीरको अलग-अलग कर देता है।

(४) चुम्बक जड़ लोहेको आकर्षित कर लेते हैं।

देवता लोग न तो भोजन करते हैं, न ही पानी पीते हैं। वे तो उन वस्तुओंको देखकर तृप्त हो जाते हैं।

**न वै देवा अश्नन्ति व विनर्तन्त दृष्ट वै तृप्यन्ति।**

**प्रश्न**—श्राद्धकर्ता जो अपने पितरोंके लिये हव्य और कव्य देते हैं, वे पितृलोक कैसे पहुँचते हैं और पहुँचानेवाले कौन होते हैं?

**उत्तर**—जब नाम और गोत्र श्राद्धीय वैदिक मन्त्रके साथ बोले जाते हैं, तब मन्त्रशक्तिद्वारा उन-उन पितरोंके पास (उनके पितरोंके पास) उनके प्रीत्यर्थ दिये

हव्य-कव्य पहुँच जाते हैं।

**प्रश्न**—वह पहुँचेगा कब ?

**उत्तर**—जब कि भक्तिपूर्वक और विधिपूर्वक किया जाय।

**प्रश्न**—कैसे पहुँचेगा ?

**उत्तर**—ब्राह्मणकी उदराग्नि आहुत उस पितृनिमित्तक अन्नको उसकी वैश्वानर अग्नि सूक्ष्म करती है और उस अग्निको महाग्नि आकृष्ट करती है तथा उस अग्निको सूक्ष्म अन्नसहित सूर्य खींचता है। '**अगौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥**' (मनुस्मृति ३।७६)

सूर्यमें पहुँचे हुए उस सूक्ष्म अन्नको चन्द्रमा सूर्यकी सुषुम्णा रश्मि खींचती है और उससे ऊपर रहनेवाले हमारे सूक्ष्म पितरोंतक वह पहुँच जाता है। इससे आप्यायित हुए वे पितर हमारे परिवारमें संरक्षकताके नाते सुख-समृद्धि रखते हैं।

**प्रश्न**—यदि अन्यके खानेपर अन्यकी तृप्ति होती है, तो प्रवासके लिये चलते समय पाथेय, मार्गका भोजन क्यों दिया जाय, घरपर ही ब्राह्मणको भोजन क्यों न करा दिया जाय ?

**उत्तर**—सूक्ष्म जगत्में सूक्ष्म सारग्राही दिव्य शक्तिसम्पन्न पितृगण सब करनेकी शक्ति रखते हैं। वसु, रुद्र आदि पितृदेव श्राद्धीय अन्नादिका भोजनकर स्वयं तृप्त होते और पितरोंको भी तृप्त करते हैं। स्थूल जगत्में ऐसा कोई साधन ही नहीं है, जिससे भोजन प्रवासीके पास पहुँच जाय। स्थूल जगत्में स्थूल भोजन भेजनेका मार्ग भी स्थूल ही है।

**प्रश्न**—यदि श्राद्धसे मृत पुरुषोंकी तृप्ति हो जाती है, तो बुझा हुआ दीपक तेल डालते ही प्रज्वलित हो उठना चाहिये ?

**उत्तर**—दीपक जलानेका साधन केवल तेल ही नहीं, अग्नि भी तो है। वह नहीं रहा तो कैसे जलेगा ? केवल लकड़ीसे आप रसोई नहीं बना सकते। आटा, दाल, चावल सब चाहिये। पितरका शरीर भले ही खत्म हो गया हो, पर वह तो लिंगशरीरसे पितृलोकमें विद्यमान है।

**प्रश्न**—मृत पुरुष तो अपने शुभाशुभ कर्मोंद्वारा विभिन्न योनियोंमें चले गये। (पशु, पक्षी, कीट और मनुष्य) फिर वो मनुष्य भोजनसे कैसे तृप्त होंगे ?

**उत्तर**—जिस योनिमें मृत पुरुष जाता है, वसु, रुद्र और आदित्य श्राद्धकर्ताद्वारा प्रदत्त अन्नको उसी जातिके योग्य और वैसा ही खाद्य बनाकर उनके पास पहुँचा देते हैं।

वे देवताको—अमृत, गन्धर्वको—चन्दन-गीतादिके रूपमें, पशुको—तृण, सर्पको—वायु, यक्षको—पेय द्रव्य, राक्षस-प्रेतको—तदुचित भोजन, मनुष्यको—अन्न, दूध आदिके रूपमें प्रदान करते हैं।

**प्रश्न**—श्राद्धके लाभ और वैदिक आधार क्या हैं ?

**उत्तर**—मनुष्योंद्वारा जब पितरोंको तृप्त कर दिया जाता है, फिर वे मानव पितर श्राद्धकर्ताको (१) दीर्घ जीवन, (२) आज्ञाकारी सन्तान, (३) विपुल धन, (४) विविध विद्याएँ, (५) राज्य, (६) संसारके सभी सुखोपभोग तथा (७) स्वर्ग एवं दुर्लभ मोक्षतक प्रदान करते हैं।

**प्रश्न**—श्राद्ध कब-कब किया जाता है ?

**उत्तर**—याज्ञवल्क्यके अनुसार—(१) अमावस्या, (२) अष्टका, (३) वृद्धि, (४) कृष्णपक्ष, (५) दोनों अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), (६) द्रव्य, (७) ब्राह्मण-सम्प्राप्ति, (८) विषुवत, (९) सूर्य-संक्रान्तियाँ, (१०) व्यतीपात, (११) गजच्छाया, (१२) चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर श्राद्ध करना चाहिये।

**(१) अमावास्या**—कृष्णपक्षकी अन्तिम तिथि, यह प्रतिमास आती है।

**(२) अष्टका**—मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी सप्तमी, अष्टमी और नवमी तीन तिथियोंकी विशेष संज्ञा है। (चारों महीनोंकी इन तिथियोंको श्राद्ध करें।)

**(३) वृद्धि**—आपके घरमें कोई वृद्धि या मंगल कार्य हो तो उससे पूर्व पितरोंके लिये किया जानेवाला श्राद्ध वृद्धिश्राद्ध कहलाता है, इसे 'नान्दीमुख' भी कहते हैं।

**(४) कृष्णपक्ष**—यह पक्ष श्राद्धके लिये सामान्य काल माना गया है।

**( ५ ) अयन** (**उत्तरायण**—मकर-संक्रान्ति (माघ)-से मिथुन-संक्रान्ति), (**दक्षिणायन**—कर्क-संक्रान्ति (श्रावण)-से धनु-संक्रान्ति)

मकर एवं कर्क-संक्रान्तिपर श्राद्ध करना चाहिये।

**( ६ ) द्रव्य**—जिस दिन चावल, कृशर, घृत, दुग्ध आदि द्रव्योंकी विपुल प्राप्ति हो जाय। उस दिन भी करना चाहिये।

**( ७ ) ब्राह्मण-सम्प्राप्ति**—सदाचारी, विद्वान् वैदिक ब्राह्मणके घर पहुँचनेपर, उस दिन भी श्राद्ध करना चाहिये।

**( ८ ) विषुवत्**—मेष और तुला-संक्रान्तिका नाम है।

**( ९ ) सूर्य-सक्रान्ति**—वर्षमें १२ संक्रान्तियाँ होती हैं।

**( १० ) व्यतीपात**—अमावास्या, जो रविवारको हो और जिस दिन आश्विन, मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा, श्रावण और धनिष्ठा इनमेंसे एक नक्षत्र हो।

**( ११ ) गजच्छाया योग**—यह उस त्रयोदशीके दिन होता है, जब सूर्य हस्त नक्षत्र और चन्द्र मघा नक्षत्रपर होता है, (चतुर्वर्गचिन्तामणि)।

**( १२ ) चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण**—इस समय ब्राह्मणोंको कच्चा अन्न (सीधा) दिया जाता है।

**प्रश्न**—आश्विन कृष्णपक्षमें ही विशेष रूपसे पितरोंका श्राद्ध क्यों किया जाता है?

**उत्तर**—जिस समय हमारा कोई जाननेवाला बड़ी पोस्टपर हो तो उससे उस समय आप अपना काम करवा सकते हैं। जब वह उस पोस्टसे हट जायगा, तब वह इतनी सकुशलतासे काम नहीं कर पायेगा। इसी प्रकार उत्तरायणमें देवोंका राज्य है, दक्षिणायनमें पितरोंका राज्य। उत्तरायण, शुक्लपक्ष और पूर्वाह्नमें देवकार्यका विधान है। जब पितरोंका राज्य होता है तो उस कालके अधिकारी वह होते हैं। उनके पास सहज ही (हव्य-कव्य) पहुँच जाता है।

**प्रश्न**—आश्विन कृष्णपक्ष ही क्यों?

**उत्तर**—(१) गजच्छाया योग—यह योग त्रयोदशीको सूर्य हस्त और चन्द्र मघापर हो, यह योग आश्विन कृष्णकी त्रयोदशीको होता है। सूर्य कन्याराशिपर रहता है। वह महालय एवं गजच्छाया कहलाता है। यह मनु कहते हैं।

(२) मनु कहते हैं—वर्षा ऋतुमें मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशीके दिन मधुमिश्रित जो कुछ भी पितरोंको दिया जाता है, वह अक्षय फलप्रद हो जाता है। यह आश्विन मासमें कृष्णपक्षमें ही आती है।

(३) वैदिक मन्त्र भी यही मानते हैं। जो मन जैसे वेगवान् और शुभ कार्यमें समर्थ हैं और शोभन कर्म करनेवाले हैं, इस मघा नक्षत्रमें आहूत वे पितर हमारे यज्ञमें पधारें। (पुरोनुवाक्या, ६)

(४) बृहन्मनु कहते हैं—वर्षाकालमें वृष्टि, कीचड़ आदिसे विपुल सामग्रीके यातायातमें स्वभावतः रुकावट आ जाती है। उन दिनों तर्पणकी व्यवस्था नहीं हो पाती एवं पितृगण खिन्न हो जाते हैं, वह आषाढ़ी पूर्णिमासे पाँचवें पक्षमें अन्न-जलकी आकांक्षा करते हैं। तब वर्षा बीत जानेपर शरद् ऋतु आरम्भ हो जाती है एवं फल, फूल, निष्पंक मार्ग, निर्मल जल एवं नवशाक, धान्य आदि सभी सुविधाएँ जुट जाती हैं।

(५) स्कन्दपुराण, नागरखण्डका वचन—

**आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे॥**
**मृतेऽहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः।**

कन्याराशिपर सूर्य होनेपर आषाढ़ी पूर्णिमासे पाँचवें पक्षमें केवल अपने पिताकी मरणतिथिको जो श्राद्ध करता है। वह निश्चय ही वर्षभर तृप्त रहते हैं।

**प्रश्न**—योग्य ब्राह्मण नहीं मिलते तो श्राद्ध करें, तो कैसे करें?

**उत्तर**—श्राद्धमें समयानुरूप जैसा भी और जितना भी विद्वान् पवित्र बाह्मण मिले, उसीको भोजन कराकर अपना श्राद्धकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। सामान्य ब्राह्मणोंकी पंक्तिके सिरेपर एक वेदपाठी, सदाचारी ब्राह्मणको बैठा दें तो वह एक ही ब्राह्मण पंक्तिमें बैठे सभी हजारों ब्राह्मणोंको पवित्र और श्राद्धाधिकारी बना देता है। यदि ब्राह्मण ही न मिले तो देवल ऋषि कहते हैं कि श्राद्ध द्रव्य—(१) अग्निको ही भेंट कर दें। (२) गायको खिला दें। (३) जलमें छोड़ दें।

पर श्राद्धका लोप न होने दें।

**सर्वाभावे क्षिपेदग्नौ गवे दद्यादथाप्सु वा।**
**नैव प्राप्तस्य लोपोऽस्ति पैतृकस्य विशेषतः॥**

**प्रश्न**—अत्यन्त गरीब व्यक्ति श्राद्ध कैसे कर पायेगा ?

**उत्तर**—उपाय—

(१) बैलको घास खिला दे या (२) अग्निमें सूखे तृण डाल दें, होम कर दे, पर श्राद्धका लोप न होने दें। घास खिलानेके पैसे न हों और न ही दियासलाई हो तो वह परम निर्धन व्यक्ति श्राद्धके दिन वनमें जाकर जोर-जोरसे रोये और कहे—

'मैं बड़ा पापी, दरिद्र हूँ, जो श्राद्ध नहीं कर पाता' यदि रोया नहीं जाय तो (वराहपुराणके अनुसार) वनमें जाकर सूर्यादि लोकपालोंको अपनी काँखका मूल दिखाकर ऊँचे स्वरसे कहे कि मेरे पास धन या श्राद्धोपयोगी कोई पदार्थ नहीं है।

**सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः।**
**सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति॥**

इस प्रकार पितरोंको केवल नमस्कार कर रहा हूँ।

**परमेश्वरके शासनमें—**

(१) कर्मक्षेत्रमें मुख्य अधिकारी अधिष्ठाता **देव**,

(२) ज्ञानक्षेत्रमें मुख्य अधिष्ठाता **ऋषिगण**, स्वास्थ्य क्षेत्रके मुख्याधिष्ठाता **पितृगण**।

**( १ ) देवगण**—यह हमारे जीवनके कर्मक्षेत्रका परिचालन करते हैं। यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठानद्वारा हम इन कर्म-संचालक देवोंके कृपापात्र बन सकते हैं।

**( २ ) ऋषिगण**—इनकी कृपासे ही हमारा ज्ञानका क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होता हुआ असीम हो जाता है। (१) शास्त्र-ज्ञान, (२) व्यवहार-ज्ञान, (३) आत्म-ज्ञान, (४) आत्मदर्शन, (५) किम्बहुना, यह सब ऋषिकृपापर ही निर्भर है।

**( ३ ) पितर**—इनके आधीन जीवनका प्राण स्वास्थ्य विभाग है। हम उन्हें श्राद्धादि कृत्योंद्वारा प्रसन्न रखेंगे तो ऋतुओंका उचित परिवर्तन रहेगा, जिससे रोगादि कम होंगे। स्थूल शरीरप्राप्तिका सारा दायित्व पितरोंपर है। जैसे गौरवर्ण, निरोगता आदि।

**प्रश्न**—काकबलि क्या है ?

**उत्तर**—काकको बलि (खाद्यपदार्थ) देकर यह घोषित करते हैं कि संसारके सभी जीव ईश्वरकी सन्तान हैं। (अमृतस्य पुत्रः) पितृलोकसे सम्बन्ध धर्मराज—यमराजका है; और उनकी रुचि विशेषतः काली वस्तुओंपर होती है। जैसे—काकको पृथ्वीपर यमराजका समशील दूत माना जाता है। काकबलि देकर यमराज प्रसन्न होंगे और पितरोंको अधिक कष्ट न होगा। पितृयज्ञ या श्राद्ध-कृत्यसे प्रेतयोनिप्राप्त जीवोंका प्रेतत्व निवृत्त हो जाता है। जैसे सर्पद्वारा काटे गये व्यक्तिकी मूर्च्छा नौसादर और कली चूना सुँघाते ही मिट जाती है।

**प्रश्न**—कितनी शक्तियोंसे श्राद्ध-कर्म किये जाते हैं ?

**उत्तर**—तीन शक्तियोंसे श्राद्धकर्म किये जाते हैं—(१) मनःशक्ति, (२) मन्त्रशक्ति, (३) द्रव्यशक्ति।

**मनःशक्ति**—श्राद्धमें मनःशक्तिका सुनियोजित प्रयोग है। श्राद्धकर्ता सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य, स्पर्शास्पर्शविवेक आदि व्रत-नियमोंसे संयमी बनता है। आत्मा ही पुत्ररूपसे प्रकट होता है। अतः पुत्र जब शुद्ध-अवस्थामें स्थित हो विशेषकर माता-पिताका आवाहन करे, तो वह निश्चय ही आते हैं। चन्द्रमा मनका अधिष्ठातृदेवता है। मनका चन्द्रलोकसे स्वाभाविक सम्बन्ध होनेके कारण चन्द्रलोकवासी पितर जरूर आते हैं, जब सच्चे मनसे बुलाया जाय।

**मन्त्रशक्ति**—शब्दमें सारे संसारको अपने अनुकूल बना लेनेकी शक्ति है। यदि वे शुचिभूत श्राद्धोपविष्ट स्वाध्याय-शील ब्रह्मशक्तिके बेजोड़ ट्रांसमीटर (ब्राह्मण)-से प्रसारित हो तो क्या मृत पुरुषोंका प्रेतत्व नहीं खत्म होता।

**द्रव्यशक्ति**—द्रव्योंमें अलौकिक शक्ति है। ब्राह्मीबूटीके सेवनसे मन एकाग्र हो जाता है। श्राद्धमें भी ऐसे ही पदार्थ लिये जाते हैं, जिनकी शक्तिसे पितरोंकी तृप्ति हो। जैसे मधुमिश्रित द्रव्य देनेपर पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है।

इसके अलावा घृत, दुग्धसे शीघ्रातिशीघ्र तृप्ति होती है। इन सब द्रव्योंका शुभ भाव और श्रद्धाभावके साथ श्राद्धमें प्रयोग किया जाय, तभी ये अपनी शक्ति प्रकट कर सकते हैं।

**प्रश्न**—यदि महालय श्राद्ध आश्विन कृष्णपक्षमें न कर पायें तो कब करें?

**उत्तर**—कन्या संक्रान्तिसे वृश्चिक संक्रान्तितक मृत्यु-तिथिको महालयका अपकर्ष श्राद्ध कर सकते हैं।

**प्रश्न**—पिता, पितामह और प्रपितामहको ही श्राद्धके लिये बुलाया क्यों जाता है?

**उत्तर**—(१) पितृलोक बहुत बड़ा है और वहाँ हमारा दिया हुआ पिण्डादि दान हमारे पिताको ही पहुँचे, इस कारण वल्दियत जोड़ देते हैं और कभी दो पिता-पुत्रके नाम भी एकसे हों तो उस संशयको दूर करनेके लिये पितामह और प्रपितामहका भी नाम जोड़ा जाता है।

**येन पितुः पितरो ये पितामहा। तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम॥**

शास्त्रोंमें हमारी तीन पीढ़ियोंको इन दृष्टिसे अलग देखा गया है, जैसे—

| पीढ़ी | देव | गुण |
|---|---|---|
| पिता | वसु | सत्त्व |
| दादा | रुद्र | रज |
| परदादा | आदित्य (सूर्य) | तम |

(२) दूसरा कारण यह भी है कि पितरोंके तीन ही अधिष्ठाता देव हैं। तीन पीढ़ीके बाद पुरुषोंसे श्राद्धकर्ताका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता है। सातवीं पीढ़ीके बाद जन्म-मरणके अशौचका भी सम्बन्ध नहीं रह जाता।

(३) तीसरा कारण—तीन पीढ़ीका शुक्र सम्बन्ध होता है।

मनुष्यमें सन्तानोत्पादक शक्तियुक्त धातु शुक्र ही है और इस धातुमें वैज्ञानिकोंने कुल ८४ अंश माने हैं, जिसमें २८ अंश खान-पानद्वारा उपार्जित हैं, शेष ५६ पूर्वजोंद्वारा प्राप्त हैं (५६+२८=८४)।

५६का क्रम इस प्रकार है—(२१-पिता, १५-पितामह, १०-प्रपितामह, चौथे पुरुष-६, पाँचवेंसे-३, छठे पुरुषसे-१) (२१+१५+१०+६+३+१=५६)। इस तरह मनुष्यका छः पीढ़ियोंसे साक्षात् शुक्रका सम्बन्ध रहता है और अपने सहित सात पीढ़ियाँ।

**प्रश्न**—पितृ उपासना-विश्वात्म-भावना क्या है?

**उत्तर**—पिछले जन्मोंको लेकर विचार किया जाय तो संसारका प्रत्येक प्राणी माता, पिता या बन्धु निकलेगा, क्योंकि ८४ लाख योनियोंमें संसारका कोई प्राणी ऐसा न होगा, जो हमारा पिता, पुत्र, माता या भाई न बना हों।

इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड हमारा बन्धु-बान्धव है। श्राद्ध हमें पितरोंकी तृप्तिके साथ विश्वप्रेमका अमूल्य पाठ पढ़ाते हैं। यही हमारी सनातन संस्कृति है, जो विश्वमें सबसे उत्तम है।

**मातामहश्राद्ध**—आजकल छोटे परिवार हैं, वहाँ कभी पुत्र-पौत्र उपलब्ध नहीं होते, अतः दौहित्रद्वारा अपने नाना या पुत्रीद्वारा अपने पिताको तर्पण दिया जाता है और श्राद्धमें पिता और माता दोनोंका ही श्राद्ध करना आवश्यक है।

## श्राद्धसे जगत्‌की तृप्ति

**मनुष्यको पितृगणकी सन्तुष्टि तथा अपने कल्याणके लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। श्राद्धकर्ता केवल अपने पितरोंको ही तृप्त नहीं करता, बल्कि वह सम्पूर्ण जगत्‌को सन्तुष्ट करता है—**

यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्यानलसुमारुतान्। विश्वेदेवान् पितृगणान् पर्यग्निमनुजान् पशून्॥
सरीसृपान् पितृगणान् यच्चान्यद्भूतसंज्ञितान्। श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत्॥

**'जो मनुष्य अपने वैभवके अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह साक्षात् ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त प्राणियोंको तृप्त करता है। श्रद्धापूर्वक विधि-विधानसे श्राद्ध करनेवाला मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, नासत्य (अश्विनीकुमार), सूर्य, अनल (अग्नि), वायु, विश्वेदेव, पितृगण, मनुष्यगण, पशुगण, समस्त भूतगण तथा सर्पगणको भी सन्तुष्ट करता हुआ सम्पूर्ण जगत्‌को सन्तुष्ट करता है।'** [ब्रह्मपुराण]

*सम-सामयिक—*

# अयोध्या-फैसला—कुछ अनकही बातें

( डॉ० श्रीसन्तोष कुमारजी तिवारी, एम.एस-सी., एल.एल.एम., पी-एच.डी. )

९ नवम्बर, सन् २०१९ ई० को भारतके उच्चतम न्यायालयकी ओरसे एक ऐतिहासिक फैसला दिया गया, जिससे पाँच सौ वर्षोंसे चले आ रहे अयोध्याके श्रीरामजन्मभूमिमन्दिर और बाबरी मस्जिदके विवादका पटाक्षेप हो गया तथा भारत राष्ट्रके आराध्य देवता मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके भव्य मन्दिरके निर्माणका मार्ग प्रशस्त हो गया। परंतु बहुतोंको यह नहीं मालूम होगा कि अयोध्यामें विवादित मस्जिदका क्षेत्रफल सिर्फ १५०० वर्ग गज ही था। यह बात सुप्रीम कोर्टके फैसलेके पृष्ठ-संख्या ९२२ पर कही गयी है। परंतु फैसलेसे मुस्लिम पक्षकारोंको मिली है पाँच एकड़ (अर्थात् ५×४८४०=२४,२०० वर्ग गज) जमीन। साथ ही इस जमीनपर उनको मालिकाना हक भी मिला है। बाबर या जिस किसीने भी जब रामजन्मभूमिपर मस्जिद बनवायी थी, तो उन्हें उसका मालिकाना हक कभी नहीं दिया था। रामजन्मभूमिपर अपने मालिकाना हकके बारेमें मुस्लिम पक्ष सुप्रीम कोर्टको सन्तुष्ट नहीं कर पाया।

मुगलोंके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी और अंग्रेज सरकारने भी उस जमीनपर मालिकाना हक मुस्लिमोंको कभी नहीं दिया था, परंतु हाँ, उस मस्जिदके रखरखावके लिये कुछ पैसा दिया जाता था। वह जमीन नजूलकी भूमि थी। किसी वक्फकी प्रापर्टी नहीं थी। वहाँ कभी भी मुस्लिमोंका शान्तिपूर्ण कब्जा भी नहीं रहा।

सुप्रीम कोर्टके फैसलेमें पृष्ठ-संख्या ६३७ पर हाईकोर्टके जस्टिस सुधीर अग्रवालके निर्णयका जिक्र है। जस्टिस अग्रवालने कहा था कि मुझे इस बारेमें कोई सन्देह नहीं है कि विवादित बिल्डिंगके अन्दर और बाहर जो स्तम्भ लगे हैं, उनपर मानव आकृतियाँ बनी हैं और कुछ जगह तो वे हिन्दू देवी-देवता-जैसी लगती हैं।

सुप्रीम कोर्टने कहा कि विवादित स्थानपर इस्लामिक चिह्न हैं और वे आकृतियाँ भी हैं, जिनकी हिन्दू पूजा करते हैं। दोनों ही एक साथ मौजूद हैं।

सुप्रीम कोर्टके समक्ष मुस्लिम पक्ष ऐसा कोई सबूत नहीं दे सका कि जिससे यह साबित हो सके कि मस्जिद-निर्माणके बादसे १८५६—५७ तक (अर्थात् ३२५ वर्षके कालखण्डमें) वहाँ कोई नमाज पढ़ी जाती थी (देखें फैसलेके पृष्ठ-संख्या ९००—९०१)।

सुप्रीम कोर्टके फैसलेके पृष्ठ संख्या ९०१—९०२ में कहा गया है कि अयोध्यामें १८५६—५७ और १९३४ में इन्हीं विवादोंको लेकर साम्प्रदायिक दंगे भी हुए थे। वर्ष १९३४ के दंगेमें इस विवादास्पद मस्जिदके गुम्बदका एक हिस्सा क्षतिग्रस्त भी हुआ था। निहंग सिखोंने मस्जिदके अन्दर घुसकर एक झण्डा गाड़ा था और हवन-पूजा की थी।

सुप्रीम कोर्टके फैसलेमें कहा गया है कि १८५६—५७ से १६ दिसंबर १९४९ तक वहाँ जुमेकी नमाज पढ़ी तो जाती थी, परन्तु इसमें बीच-बीचमें व्यवधान भी आते रहे। अन्तिम बार जुमेकी नमाज १६ दिसम्बर १९४९ को पढ़ी गयी।

**कोर्टके फैसलेसे हिन्दुओंको क्या मिला?**

अगर हिन्दू पक्षको देखें तो सुप्रीम कोर्टके फैसलेसे उन्हें रामजन्मभूमिके पूरे क्षेत्रमें बगैर किसी रोक-टोकके भव्य मन्दिर बनवानेका कानूनी अधिकार मिल गया। रामजन्मभूमि-विवाद देशकी तीन-चौथाईसे अधिक आबादीकी आस्थाके साथ जुड़ा रहा है और यह सवा सौ सालसे ज्यादा समयसे अदालतोंमें लम्बित रहा है। अयोध्यामें कई मन्दिर हैं, परंतु रामजन्मभूमि अकेला ऐसा मन्दिर है, जहाँ गर्भगृह है। अन्य किसी मन्दिरमें गर्भगृह नहीं है। इस विवादको निपटानेके लिये पाँच सदस्यीय खण्डपीठ बधाईकी पात्र है, जिसने सर्वसम्मतिसे अपना फैसला दिया। खण्डपीठके सदस्य थे—मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति एस.ए. बोबोडे, न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति अशोक भूषण, और न्यायमूर्ति एस.अब्दुल नजीर।

**मध्यस्थताका प्रयास**—सुप्रीम कोर्टने अपना फैसला

देनेसे पहले दोनों पक्षोंको पर्याप्त समय दिया था कि वे आपसी समझौतेसे इस विवादको निपटा लें। मार्च २०१९ को सुप्रीम कोर्टने अपने एक रिटायर्ड जज फकीर मोहम्मद इब्राहीम कालीफुल्लाकी अध्यक्षतामें एक समिति बनायी थी, जो कि इस मुद्देको बातचीतके जरिये निपटा सके। समितिके दो अन्य सदस्य थे, श्रीश्रीरविशंकर और वरिष्ठ वकील श्रीराम पाँचू।

वर्ष २०१७ में भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि यह मामला यदि आपसी समझौते से निपटा लिया जाय तो अच्छा होगा। देश के नरमपंथी मुसलमान हमेशा इस तरह के समझौतेके पक्षमें रहे हैं। परंतु कट्टरपंथी हमेशा समझौतेका विरोध करते रहे।

जब यह मामला इलाहाबाद हाईकोर्टकी लखनऊ बेंचके सामने था, तब भी यह समझा जाता था कि इसका समाधान यदि आपसी बातचीतसे हो जाय, तो ज्यादा अच्छा होगा। परंतु ऐसा नहीं हो सका। अन्तमें वर्ष २०१० में हाईकोर्टको अपना फैसला सुनाना पड़ा। उसी फैसलेके खिलाफ सुप्रीम कोर्टमें अपीलें दायर की गयी थीं, जिनपर शीर्ष अदालतका फैसला ९ नवम्बर, २०१९ ई० को आया।

**समुचित शोधकी कमी**—हाईकोर्टने अपने फैसलेके बिन्दु-संख्या ३६२३ और ३६२४ में मुस्लिम पक्षके कुछ गवाहोंद्वारा प्रकाशित एक पुस्तिकाके बारेमें यह टिप्पणी की कि इस प्रकारके संवेदनशील मसलोंपर समुचित शोध किये बगैर कोई चीज छपवानेसे जनताके आपसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंपर विपरीत प्रभाव पड़ा है। कोर्टने आश्चर्य किया कि इस प्रकारके प्रकाशनको उन लोगोंने लिखा है, जो कि इतिहासकार या पुरातत्त्वविद् होनेका दावा करते हैं।

**पुरातत्त्वविद् श्री के. के. मुहम्मदकी भूमिका**—सुप्रीम कोर्ट का फैसला आनेसे लगभग एक माह पूर्व टाइम्स ऑफ इंडियाने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के इतिहास-विभागके चेयरमैनका एक पत्र खूब मोटा शीर्षक लगाकर समाचारके तौरपर छापा। इस पत्रमें कहा गया था कि के. के. मुहम्मद कभी भी भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणकी उस टीमके सदस्य नहीं थे, जिसने वर्ष १९७६-७७ में अयोध्याके विवादित स्थलपर उत्खनन कार्य किया था।

इससे पहले भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (उत्तर)-के पूर्व क्षेत्रीय निदेशक के. के. मुहम्मदने टाइम्स ऑफ इंडियामें प्रकाशित अपने एक इण्टरव्यूमें कहा था कि अयोध्याकी बाबरी मस्जिदके नीचे भगवान् विष्णुका एक बड़ा मंदिर था।

यहाँ यह बता देना जरूरी है कि अयोध्यामें यह उत्खनन-कार्य श्री बी. बी. लालके नेतृत्वमें एक टीमने किया था, जिसके एकमात्र मुस्लिम सदस्य श्री के. के. मुहम्मद थे।

श्री बी. बी. लालकी आयु अब लगभग एक सौ वर्ष है और वह भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणके डाइरेक्टर जनरल भी रहे हैं। टाइम्स ऑफ इंडियाकी उस खबरके जवाबमें श्री बी. बी. लालने उस अखबारको एक ईमेल भेजकर स्पष्ट किया कि के. के. मुहम्मद उस समय उनकी टीमके मेम्बर थे।

पुरातत्त्वविद् के. के. मुहम्मद भी अब भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणसे रिटायर हो चुके हैं और कालीकट (केरल)-में रहते हैं। उनकी पुस्तक 'मैं हूँ भारतीय' (प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१८)-में एक अध्याय है—'अयोध्या—कुछ ऐतिहासिक तथ्य'। मूलत: यह पुस्तक उन्होंने अपनी मातृभाषा मलयालममें लिखी है। इसका हिन्दीमें अनुवाद हुआ है और यह जल्दी ही तेलुगू, कन्नड़ और मराठी भाषाओंमें भी आनेवाली है।

वह अपनी पुस्तकके उपर्युक्त अध्यायमें लिखते हैं—

प्रो. बी. बी. लालके नेतृत्वमें अयोध्या-उत्खनन टीममें 'दिल्ली स्कूल ऑफ आर्किओलॉजी'से मैं एक सदस्य था। उस समयके उत्खनन में मन्दिरका स्तम्भोंके नीचेके भागमें ईंटोंसे बनाया हुआ आधार देखनेको

मिला। उत्खननके लिये जब मैं वहाँ पहुँचा, तब बाबरी मस्जिदकी दीवारोंमें मंदिरके स्तम्भ थे।··· स्तम्भके नीचेके भागमें ११वीं एवं १२वीं शताब्दीके मन्दिरोंमें दिखनेवाले पूर्ण कलश बनाये गये थे। मंदिर कलामें पूर्ण कलश आठ ऐश्वर्य-चिह्नोंमें एक है। सन् १९९२ ई०में बाबरी मस्जिद ढहाये जानेके पहले एक या दो स्तम्भ नहीं, चौदह स्तम्भोंको हमने देखा है।

यहाँ यह बता देना जरूरी है कि हाईकोर्टके निर्देशपर वर्ष २००३ ई०में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणने फिर वहाँ ग्राउण्ड पेनेट्रेटिंग (जी.पी.आर.) टेकनीकसे सर्वे किया था। जी.पी.आर. तकनीकसे जो जानकारी मिलती है, वह पूर्ण वैज्ञानिक होती है। इससे जमीनके कई मीटर अन्दरतककी छोटी-छोटी चीजोंकी भी थ्री डायमेन्शनल फोटो ली जा सकती है। यह जी.पी.आर. तकनीक वर्ष १९७६-७७ में भारतमें उपलब्ध नहीं थी। इस सर्वेमें पता चला कि मस्जिदके नीचे १७ पंक्तियोंमें ८५ खम्भे हैं। प्रत्येक पंक्तिमें पाँच खम्भे हैं और ये सभी मूलत: हिन्दू धर्मसे सम्बन्धित लग रहे हैं। मस्जिदकी अपनी कोई नींव नहीं थी। वह तो पूर्वस्थित संरचनाके ऊपर बनायी गयी थी। (देखें, सुप्रीम कोर्टका फैसला, पृष्ठ ९०५)

वर्ष २००३ में डॉ० हरि मांझी और डॉ० बी.आर. मणिकी देख-रेखमें जी.पी.आर. तकनीकसे जो सर्वे हुआ था, उसकी पूरी वीडिओग्राफी की गयी थी। उस सर्वे टीममें कुछ मुस्लिम पुरातत्त्वविद् भी शामिल थे, जैसे कि गुलाम सईउद्दीन ख्वाजा, अतीकुर रहमान सिद्दीकी, जुल्फिकार अली, ए.ए. हाशमी आदि। यदि एक लाइनमें इन लोगोंद्वारा किये गये सर्वेका निष्कर्ष बताया जाय, तो वह यह था कि विवादित मस्जिदके नीचे एक विशाल विष्णु-मन्दिर था।

के.के. मुहम्मद अपनी पुस्तक में कहते हैं 'बाबरी मस्जिद हिन्दुओं को देकर समस्याका समाधान करनेके लिये मुसलमान नरमवादी तैयार थे, परंतु इसको खुलकर कहनेकी किसीमें हिम्मत नहीं थी।'

के.के. मुहम्मदने आगे लिखा—'उग्रपंथी मुस्लिम गुटकी मदद करनेके लिये कुछ वामपंथी इतिहासकार सामने आये और बाबरी मस्जिद नहीं छोड़नेका उपदेश दिया। वास्तवमें उन्हें मालूम नहीं था कि कितना बड़ा पाप कर रहे हैं। ····दिल्लीके जवाहरलाल नेहरू विश्व-विद्यालयके एस. गोपाल, रोमिला थापर, बिपिन चन्द्रा जैसे इतिहासकारोंने 'रामायण'के ऐतिहासिक तथ्योंपर सवाल खड़े कर दिये और कहा कि १९वीं सदीके पहले मन्दिर तोड़नेका सुबूत नहीं है।··· उनका साथ देनेके लिये प्रो. आर.एस. शर्मा, अनवर अली, डी.एन. झा, सूरजभान, प्रो. इरफान हबीब आदि भी आगे आये। तब एक बड़े गुटका समर्थन बाबरीवालोंको मिल गया। इसमें केवल सूरजभान एक पुरातत्त्वविद् हैं। प्रो. आर. एस. शर्माके साथ रहे कई इतिहासकारोंने बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटीके विशेषज्ञोंके रूपमें कई बैठकोंमें भाग लिया था।

बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटीकी कई बैठकें भारत सरकारके भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्के अध्यक्ष प्रो. इरफान हबीबकी अध्यक्षतामें होती थीं। बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटीकी बैठक भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्के कार्यालयमें आयोजित करनेका परिषद्के तत्कालीन सदस्य सचिव इतिहासकार प्रो. एम.जी.एच. नारायणने विरोध भी किया था, किंतु प्रो. हबीबने उसे नहीं माना।

के. के. मुहम्मद लिखते हैं कि उदारवादी ताकतोंको हतोत्साहित करने और उग्रवादियोंको बढ़ावा देनेमें एक अंग्रेजी अखबारकी भी भागीदारी रही।

अपनी पुस्तकमें के. के. मुहम्मद लिखते हैं—'आई.सी.एच.आर.' (अर्थात् भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्)-में समस्याके समाधान चाहनेवाले लोग थे, परंतु इरफान हबीबके सामने वे कुछ कर नहीं सकते थे। स्वतंत्र विचार प्रकट करनेवालोंको साम्प्रदायिक कहा जाता है।

पद्मश्री के. के. मुहम्मदको सच बोलनेके लिये नौकरीसे निलम्बित करने और जानसे मार देनेतककी धमकियाँ मिलती रही हैं। रिटायरमेंटके बाद अब उनको पुलिस प्रोटेक्शन मिली हुई है।

रामजन्मस्थानका महत्त्व हिन्दुओंके लिये वही है, जो कि मुसलमानोंके लिये मक्काका है। वाल्मीकिरामायण, स्कन्दपुराण आदि अनेक ग्रन्थोंमें अयोध्या और रामजन्म-भूमिका जिक्र है। वाल्मीकिरामायण बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। बृहद् धर्मोत्तरपुराणमें अयोध्याको मोक्षदायिनी कहा गया है।

सुप्रीम कोर्टने यह भी कहा है कि वाल्मीकिरामायण और स्कन्दपुराणसहित अन्य धार्मिक ग्रन्थोंके कारण हिन्दुओंका विश्वास है कि वह जगह राम का जन्मस्थान है। कोर्टने कहा कि धार्मिक ग्रन्थोंकी बातों को आधारहीन करार नहीं दिया जा सकता।

सुप्रीम कोर्टने यह भी पाया कि रामचरितमानस और आइने अकबरीमें भी अयोध्याको धार्मिक स्थल बताया गया है। साथ ही सुप्रीम कोर्टने अपने फैसलेमें विलियम फिंच, जोसफ टेफेनथेलर आदि विदेशी यात्रियोंके यात्रा-वृत्तान्तों, ईस्ट इण्डिया गेजेटियर ऑफ वाटर हैमिल्टनसहित अन्य ऐतिहासिक साक्ष्योंको भी आधार बनाया। तमाम पुराने सरकारी दस्तावेजोंमें मस्जिदको 'मस्जिद जन्मस्थान' कहा गया है।

रामजन्मभूमि पक्षकी ओरसे कहा गया था कि उस स्थानपर महाराजा विक्रमादित्यके समयसे एक मन्दिर था, जिसके कुछ हिस्सेको बाबरकी सेनाके कमाण्डर मीर बाँकीने नष्ट किया था और मस्जिद बनानेका प्रयास किया था। उसने उसी मन्दिरके खम्भे आदि इस्तेमाल किये। ये खम्भे काले कसौटी पत्थरके थे और उनपर हिन्दू देवी-देवताओंकी आकृतियाँ खुदी हुई थीं। इस निर्माण-कार्यका बहुत विरोध हुआ और हिन्दुओंने कई बार लड़ाइयाँ लड़ीं, जिनमें लोगोंकी जानें भी गयी थीं। अन्तिम लड़ाई १८५५ में लड़ी गयी थी। इस सबके कारण वहाँ मस्जिदकी मीनार कभी नहीं बन सकी थी और वुजूके लिये पानीका प्रबन्ध भी कभी नहीं हो सका था।

इस लेखके अन्तमें यह बताना भी जरूरी है कि रामजन्मभूमिमन्दिरके लिये चले वर्षों पुराने लम्बे संघर्षमें कई लोगोंने अपने प्राणोंकी आहुति भी दी है। कइयोंने अपने स्वजन खोये हैं। यह लेख उन सभीको समर्पित है।

**( लेखक झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालयके सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं। )**

# झाँकी देखिय अवधपुरी की

**( अवधबासी श्रीसीतारामजी 'भूप' )**

**झाँकी देखिय अवधपुरी की।**
**अन्तरिक्ष नभ में जहँ व्यापी, पावनि चरन-धूरि सिय-पी की॥**
**मन्दिर-पांति बढ़ावति शोभा, हाट बाट प्रत्येक गली की।**
**कीजै लोचन तृप्त देखि छबि, रघुनन्दन सँग जनक-लली की॥**
**सन्त अनेक पुरी सेवत यहि, जिनकी विषयवासना फीकी।**
**ज्ञानप्रकाश पसारि लेत हरि, छन महँ तमोवृत्ति जगती की॥**
**सेइय सदा सुखद सरजू सरि, छटा लसत मन्दिर-अवली की।**
**तरल तरंग उठत सोहत सोइ, सीढ़ी सी जनु मुक्तिथली की॥**
**बसे प्रयाग भ्रमे ब्रज-मण्डल, गली लखी शिव के काशी की।**
**अवधपुरी ही के सेवन से, जरनि मिटति है जन के जी की॥**
**युगल नाम सुख रटत निरंतर, श्रवन सुनत लीला उनही की।**
**लखत युगलछबि मुँदत नयन सन, लगी सुरति श्रीअवधधनी की॥**
**निकसैं प्रान मातु-सरजूतट, जो पै है करनी कछु नीकी।**
**यहै एक लालसा रही अब, 'सीताराम अवधबासी' की॥**

# मनके जीते जीत

( डॉ० श्रीसुनीलकुमारजी सारस्वत )

सन्त कबीरने कहा है—

**काया खेत किसान मन, पाप पुण्य दो बीज।**
**बोया तूने आपना, काया कसके जीव॥**
**करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय।**
**रोपे पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय॥**

अर्थात् शरीर खेत है, मन किसान है, पाप-पुण्य दो बीज हैं। जो बोयेंगे, वही काटेंगे। बुरे कर्म कायामें जीवको पीड़ा पहुँचाते हैं। यदि कोई बुरा कर्म करके सुख चाहे, तो वह कैसे पायेगा? बबूलका पेड़ लगाकर आमका फल कैसे मिलेगा?

मन मनुष्यके शरीरका अदृश्य अंग है, जो दिखायी नहीं देता, किंतु वह शरीरका सबसे शक्तिशाली हिस्सा है। मनके अन्दर सम्पूर्ण दुनिया समाहित है। मन एक ऐसा पर्दा है, जिसपर इच्छाएँ प्रक्षेपित होती हैं। हमारे शरीरमें इन्द्रियाँ जो भी कार्य करती हैं, वे मनके सहयोगसे करती हैं। मनके बिना इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकतीं, अत: मनको महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है।

भारतीय शास्त्रोंमें मनके लिये 'मनस्' शब्दका प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ है, वे साधन या उपक्रम जो किसी घटना, विचार या ज्ञानके लिये मुख्य रूपसे जवाबदेह होते हैं। अर्थोंमें अन्तर होते हुए भी चित्त, हृदय, स्वान्त:, हृद् संस्कृतमें मनके पर्यायवाची शब्द कहे गये हैं। मनका महत्त्व इसलिये अधिक हो जाता है, क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय और आत्माको आपसमें जोड़नेवाली कड़ी है, जिसकी सहायतासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। मन अपने-आपमें निर्जीव तत्त्व है। अर्थात् मन जड़ तत्त्व है, जिसमें रंग, स्पर्श, ज्ञान, आनन्द और पीड़ाकी कोई अनुभूति नहीं होती। जब मन आत्माके संसर्गमें आता है, तभी इसमें अनुभूति होती है। जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त करनेका बाहरी साधन हैं, उसी प्रकार मन ज्ञानप्राप्तिका आन्तरिक साधन है।

हमारा दृष्टिकोण ही हमारे जीवनकी दिशाधारा तय करता है। छोटी-छोटी घटनाओंमें दृष्टिभेदसे ही हमारे देखनेके नजरियेमें बहुत अन्तर हो जाता है। जैसे यदि शरबतसे भरा हुआ आधा गिलास है, तो वह किसीके लिये आधा खाली है, जबकि किसी औरके लिये वह आधा गिलास भरा हुआ है। जिस व्यक्तिने गिलासको आधा भरा हुआ समझा, उसका दृष्टिकोण सकारात्मक है और जिसने उस शरबतके गिलासको आधा खाली समझा, उसका दृष्टिकोण नकारात्मक है। यानी नकारात्मक दृष्टिकोणवाले व्यक्तिका ध्यान अभावकी ओर रहता है, जबकि सकारात्मक दृष्टिकोणवाले व्यक्तिका ध्यान भावकी ओर रहता है।

आज हमारे समाजमें परिवार बिखर-से रहे हैं और पारिवारिक शान्ति विलुप्त हो रही है। अक्सर परिवारोंमें यह देखा जाता है कि परिवारके सदस्य घर-परिवारके सदस्योंकी अपेक्षा बाहरके लोगोंसे अधिक घुल-मिलकर बातें करते हैं और घर-परिवारके लोगोंके प्रति उदासीन बने रहते हैं, उनसे बहुत कम ही बातचीत करते हैं, यही कारण है कि उनमें आपसी विश्वासकी भावना कमजोर होती है।

मगधके राजा सर्वदमनके राज्यमें राजगुरुका स्थान काफी समयसे खाली था। एक महापण्डित दीर्घलोभने राजासे उक्त पदपर स्वयंको नियुक्त करनेका आग्रह किया। राजा प्रसन्न हुए, किंतु उन्होंने दीर्घलोभसे एक निवेदन किया कि 'आप एक बार अपने पठित सारे ग्रन्थोंको पुन: पढ़ लें, उसके बाद आपकी नियुक्ति होगी।' जबतक आप आयेंगे नहीं, तबतक यह स्थान रिक्त ही रहेगा।

विद्वान् दीर्घलोभने सारे ग्रन्थोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा और राजदरबारमें उपस्थित हो गये। राजाने विनम्रतापूर्वक फिरसे उन्हीं ग्रन्थोंको पढ़नेका आग्रह कर दिया। दीर्घलोभ असमंजसकी स्थितिमें पुन: पढ़नेके लिये चल दिये। नियत अवधि बीतनेपर भी वे राजदरबारमें नहीं लौटे, तब राजा स्वयं उनके पास पहुँचे और न आनेका कारण पूछा। पण्डित दीर्घलोभने कहा—'गुरु अन्तरात्मामें

रहता है। बाहरके गुरु कामचलाऊभर होते हैं। आप अपने अन्दरके गुरुसे परामर्श लिया करें।' राजा सर्वदमन नम्रतापूर्वक दीर्घलोभको अपने साथ ले गये, और उन्हें राजगुरुके स्थानपर नियुक्त करते हुए बोले—'अब आपने शास्त्रोंका सार जान लिया, इसलिये आप दरबारके राजगुरुके स्थानको सुशोभित करें।'

हर व्यक्तिमें गुण और अवगुण दोनों होते हैं, लेकिन यदि हमारा चिन्तन गुणोंकी ओर केन्द्रित रहे, तो उसके फायदेके रूपमें हमें शान्ति और प्रसन्नताका अनुभव होता है। इसके विपरीत निराशावादी और अवगुणवादी लोग अपने चारों ओर अभावों और दोषोंके दर्शन करते रहते हैं, जिसके कारण वे अपने जीवनमें शान्ति और प्रसन्नताका अनुभव कर ही नहीं पाते। जो व्यक्ति अभावको भाव, विषादको हर्ष तथा दुःखको सुखमें बदलनेकी कला जानता है, उसी व्यक्तिका जीवन सफल एवं सार्थक है।

दुखी व्यक्ति अपनी कल्पनाओंके सहारे छोटेसे दुःखको भी बहुत बड़ा रूप दे देता है। वह स्वयंको संसारका सबसे दुखी और अभागा समझने लगता है, पर यह सब मात्र भ्रम होता है। सच्चाई यह है कि उससे भी अधिक दुखी और समस्याग्रस्त लोगोंसे यह संसार भरा हुआ है। कुछ लोग अपने परिवारके वातावरण, व्यवसाय एवं नौकरीसे व्यर्थ ही असन्तुष्ट और दुखी रहते हैं। प्रायः उन्हें दूसरे परिवारोंमें, व्यवसायमें, नौकरीमें अधिक सुख-शान्ति, वैभव, उन्नतिके दर्शन होते हैं, पर जब वे उनकी अन्तरंग स्थितिसे परिचित होते हैं, तो स्वयंके अज्ञानका बोध होता है।

प्राचीन कहावत है—***'मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।'*** अतः जब व्यक्ति अपने मनमें यह सोच लेता है कि वह अमुक काम नहीं कर सकता तो वह अपने अन्दर नकारात्मक गुण पैदा कर लेता है। और जब व्यक्ति यह सोच लेता है कि वह अमुक काम कर सकता है, तो वह अपने अन्दर सकारात्मक गुण पैदा कर लेता है। सन्त कबीरने कहा है—

**मन के बहुतक रंग हैं, छिन-छिन बदले सोय।**
**एक रंग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय॥**
**मन मनसा जब जायेगी, तब आवैगी और।**
**जब ही निश्चय होयेगा, तब समझेगा ठौर॥**

अर्थात् मन मूर्ख है, लोभी है, चंचल है और चोर है। यदि मन बेलगाम हो जाय तो यह हमें विनाशके मार्गपर ले जाता है। इसलिये मनपर नियन्त्रण रखना परमावश्यक है। मनपर विचारोंका प्रभाव होता है। अतः जैसे हमारे विचार होंगे, वैसा ही हमारा मन भी होगा। मन भूमिमें रोपे गये विचार नामक बीजकी किस्म ही है, जो किसीके बुरे एवं अच्छे व्यक्तित्वका निर्धारण करती है। मन और मनकी इच्छाएँ जब मिट जायँगी, तब जीवन-मुक्तिकी विलक्षण स्थिति प्राप्त होगी। जैसे ही मन स्थिर हुआ, वैसे ही शान्तिकी प्राप्ति होगी।

सुखी और दुखी दोनों तरहके लोगोंके लिये अपनी दृष्टिको व्यापक बनाना आवश्यक है। इससे जहाँ सुखका अभिमान मिट जाता है, तो वहीं दुःखका भाव और तनाव भी समाप्त हो जाता है। अपनी वास्तविक स्थितिको भूलकर हम जब भी औरोंसे अपनी तुलना करनेका प्रयत्न करेंगे, हम अपने कर्तव्योंसे तथा कर्म करनेसे विमुख ही होंगे। एक सामान्य प्रवृत्ति यह है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयंको अधिक दुखी समझता है। इस मनोवृत्तिमें सुधार और परिष्कार करना चाहिये। इन जटिल और विषम स्थितियोंमें हमारी आध्यात्मिक साधना और उपासना ही हमारे सोये हुए मनोबल और आत्मबलको जगा सकती है, जिससे दुःख और भयकी ग्रन्थियाँ नष्ट हो सकती हैं।

**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।**
**आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥**

बुद्धिहीन मनुष्योंको भ्रमके कारण ही भोग-धन, मान, यश, आराम, अधिकार आदिमें सुखकी प्रतीति होती है। वास्तवमें तो इनसे दुःख ही उत्पन्न होते हैं, इसीसे बुद्धिमान् लोग भोगोंमें अपने मनको फँसने नहीं

देते। '**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' अर्थात् भोगसे अशान्ति प्राप्त होती है और वह जीवको जबरदस्ती नरकानलमें दग्ध होनेके लिये ले जाती है, जबकि त्यागसे जीवनमें शान्ति मिलती है और शान्तिसे मनुष्य परमानन्दस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करता है।

आज मनुष्यकी अधीरता प्रबल हो रही है। वह सब कुछ तुरंत पा लेना चाहता है। उसे हर कर्मका ऐसा फल चाहिये, जो उसकी कामनाओंको पूरा करनेमें सहायक हो। उसके पास दूसरोंके लिये सोचनेका समय नहीं है। दूसरोंके लिये वह तभी सोचता है, यदि कोई स्वहित सिद्ध होता हो। दृष्टिका यह संकुचन धर्मसे दूर होते जानेका परिणाम है। आज धर्मस्थलोंपर भीड़ है, पर उन लोगोंकी जो धर्मचिन्तनसे विहीन हैं। धर्म मूलत: चिन्तन है, जो कर्मोंसे प्रकट होता है। चिन्तनविहीन कर्म बस आडम्बर बनकर रह जाते हैं। धर्म और अध्यात्मसे जुड़ना मन, वचन और कर्मका समन्वित प्रयास है। इससे ही वर्तमानसे आगे देख पानेकी योग्यता विकसित होती है। समाजका हित इसीमें है।

अक्सर लोग अतीतकी स्मृतियोंमें खोये रहते हैं या भविष्यके सपने बुनते रहते हैं और इसमें वर्तमान उपेक्षित होता है। जबकि होना यह चाहिये कि हम अतीतकी गलतियोंसे वर्तमानमें सबक लेकर अपने भविष्यको सुन्दर बनायें।

प्रत्येक मानवमें अच्छी-बुरी दोनों प्रकारकी भावनाएँ होती हैं। कभी-कभी अपने अहंकारवश मानव अपना आचरण राक्षसी प्रवृत्तिकी ओर ले जाता है। ऐसेमें रामनाम उस दशाननरूपी अहंकारी रावणका नाश करता है और मनुष्यत्वकी ओर प्रवृत्त करता है। यही रामनाम जपमें निर्गुण रूप है और रामकथामें सगुण स्वरूप, जो दोनों भूमिकाओंमें केवल लोकरक्षक और लोककल्याणकी भूमिका निभाता है। रामका जीवन इसी लोककल्याणरूप मुख्य कार्यके लिये तत्पर है, जिसमें उन्हें सभीके सहयोगकी जरूरत थी। इसी कार्यके लिये रामकथाके सभी मानव-पात्र और मानवेतर चरित्र इस कथा-प्रवाहमें अपना योगदान प्रदान करते हैं।

रामकथा आजकी विषम परिस्थितियोंका प्रभावी समाधान करती है। इसके नीतिगत मानवीय सन्देशोंका प्रसार, प्रचार एवं अनुपालन परमावश्यक है। मानवीय मूल्यका अर्थ है लोकहित या जिसमें सबका हित समाहित हो। तुलसीका मानस हमें बताता है कि सर्वमंगलकी भावनासे अनुप्राणित होकर ही हम अपनी भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिमें सफल हो सकते हैं।

अन्तमें पूज्य पिताजी डॉ० श्रीगणेशदत्त सारस्वतकी निम्न काव्य-पंक्तियोंका स्मरण करते हुए अपनी लेखनीको विराम देता हूँ।

**विष घृणाका न घोलें निवेदन यही, बोल कड़वे न बोलें निवेदन यही।**
**आग घरमें लगी है बुझायें उसे, बन प्रभंजन न डोलें निवेदन यही॥**
**आपके हैं सभी गैर कोई नहीं, निज हृदय को टटोलें निवेदन यही।**
**दूसरोंको कहें बादमें हम बुरा, पहले अपनेको तौलें निवेदन यही॥**

# भज मन रामचरन सुखदाई

**भज मन रामचरन सुखदाई॥**

**जिहि चरननसे निकसी सुरसरि संकर जटा समाई। जटासंकरी नाम परयो है, त्रिभुवन तारन आई॥**
**जिन चरनन की चरनपादुका भरत रह्यो लव लाई। सोइ चरन केवट धोइ लीने तब हरि नाव चलाई॥**
**सोइ चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई। सोइ चरन गौतमऋषि-नारी परसि परमपद पाई॥**
**दंडकबन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई। सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनक मृगा सँग धाई॥**
**कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल तिन जय छत्र फिराई। रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर परसत लंका पाई॥**
**सिव-सनकादिक अरु ब्रह्मादिक सेस सहस मुख गाई। तुलसिदास मारुत-सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई॥**

*तीर्थ-चिन्तन—*

# वाराणसी—एक तात्त्विक विवेचन

( प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' )

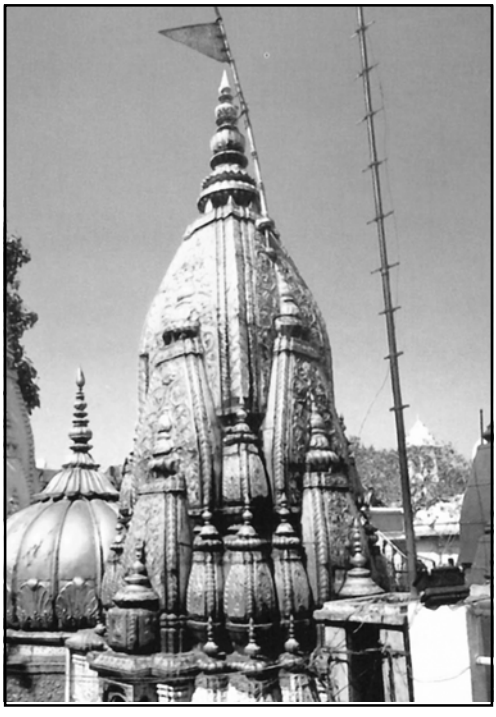

**मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।**
**जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥**

**जिज्ञासु—**'सो कासी'का क्या अभिप्राय है? 'सेइअ' तथा 'कस न'से क्या ध्वनित होता है? किष्किन्धाकाण्डके प्रारम्भमें ही 'सोरठा'के प्रयोगका क्या तात्पर्य है?

**समाधान—**'सो' शब्दको खड़ी बोलीमें 'वह' कहेंगे। 'सो' अर्थात् 'वह' निश्चयवाचक सर्वनाम है। यह निश्चयात्मक होनेके साथ-साथ विप्रकृष्ट है अर्थात् दूरवर्तीके लिये प्रयुक्त है; इसके अतिरिक्त परोक्षसूचक भी है। 'सो कासी'से ध्वनित होता है कि वह काशी आधिभौतिकके अतिरिक्त आध्यात्मिक भी है।

'सेइअ' शब्द संस्कृतके 'सेवस्व' तत्समका अपभ्रंश रूप है। 'सेवन करो'—यह अनुज्ञा-अर्थमें लोट् लकार है। यह आदेशात्मक क्रिया है—'काशीका सेवन करो।'

'कस न' यह मार्मिक प्रयोग है। भैया! ऐसी काशीका सेवन क्यों नहीं करते? यहाँ महाकविका आन्तरिक खेद प्रकट हुआ है। कवि मर्माहत हैं और ऐसे मानव-तनुधारियोंके लिये उन्हें विषाद है, कष्ट है, पीड़ा है, जो काशीका सेवन नहीं करते। क्यों? उत्तर है—यह अविमुक्त क्षेत्र है, इसका सेवन करो, करते रहो—

**यत्र संनिहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम्।**
**तत् क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥**

(मत्स्यपु० १८१। १५)

यहाँ देवाधिदेव महादेवकी संनिधि है—समीपता है, नित्यस्थिति है। उन्होंने इस क्षेत्रका न कभी त्याग किया है और न करेंगे। इसी कारण इस काशीको 'अविमुक्त' क्षेत्र कहा जाता है।

योगियाज्ञवल्क्य कहते हैं—

**अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत, अविमुक्तं न विमुञ्चेत्, एवमेवैतद् याज्ञवल्क्यः।**

(जाबालोपनिषद् १)

भाव यह कि काशीमें प्राण-त्याग करनेपर भगवान् रुद्र जीवको तारक ब्रह्म **'रां रामाय नमः'**—इस षडक्षर महामन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे प्राणी अमृत होकर मुक्त हो जाता है। इसलिये अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-का सेवन अवश्य करें। इसका त्याग कभी न करें।

शिवपुराणकी 'ज्ञान-संहिता'में कहा गया है—

**कर्मणां कर्षणात् सा वै काशीति परिकथ्यते।**

(४९। ४६)

'समस्त शुभाशुभ कर्मोंका कर्षण अर्थात् संशोधन करनेके कारण वह 'काशी' नामसे पुकारी जाती है।'

**इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।**
**सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥**

(मत्स्यपु० १८०। ४७)

'यह वाराणसी मेरा अत्यन्त गुप्त क्षेत्र है और समस्त प्राणियोंके लिये सर्वदा मुक्तिका कारण है।'

'इस अविमुक्त क्षेत्रमें निष्कामी अथवा सकामी मनुष्य ही नहीं, अपितु तिर्यक् प्राणी, पशु, पक्षी भी प्राण त्यागकर मेरे लोकमें प्रशंसित होते हैं—

**अकामो वा सकामो वा ह्यापि तिर्यग्गतोऽपि वा।**
**अविमुक्त त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते॥**

(मत्स्यपु० १८०।२२)

उपर्युक्त कथनकी सम्पुष्टि 'कूर्मपुराण'के निम्न श्लोकसे भी होती है—

**यत्र साक्षान्महादेवो देहान्तेऽक्षय्यमीश्वरः।**
× × ×
**व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तथैव ह्यविमुक्तकम्॥**

(३१।६०-६१)

'जहाँ साक्षात् परमेश्वर महादेव प्राणीको मरण-कालमें अक्षय तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं, उस काशीको इसी कारण 'अविमुक्त' क्षेत्र कहा जाता है।'

भूतभावन भगवान् भूतनाथने दुश्चर तपश्चर्याके पश्चात् भगवान् श्रीरामसे काशीमें प्राणियोंकी मुक्तिके लिये वरदान प्राप्त किया। 'अध्यात्मरामायण'में स्वयं महेश्वरका यह वचन ध्यान देनेयोग्य है—

**अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।**
**मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥**

(६।१५।६२)

'प्रभो! मैं आपका नाम जपता हुआ कृतार्थ होकर भवानीके साथ काशीमें रात-दिन निवास करता हूँ और यहाँ मरनेवालेकी मुक्तिके लिये आपके 'राम'-नामरूप मन्त्रका उपदेश करता रहता हूँ।'

किष्किन्धाकाण्डके प्रारम्भमें 'सोरठा' रखनेका अभिप्राय यह है कि बालकाण्डमें श्रीगणेशजीकी वन्दनामें प्रथम 'सोरठा' छन्द ही है। यह छन्द बल-विद्या-ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये ही संकेतित है। यह दोहेका विपरीत रूप है। दोहाका प्रथम चरण तेरह मात्राओंका होता है और क्रमशः द्वितीय चरणमें क्षयको प्राप्त होता हुआ वह केवल ग्यारह मात्राओंका रह जाता है। इसमें क्रमिक ह्रास है, पर सोरठा क्रमशः वृद्धिकी ओर खिसकता चलता है। इसके प्रथम चरणमें ग्यारह मात्राएँ और द्वितीय चरणमें वृद्धिपरक तेरह मात्राएँ होती हैं। दोनों ही मात्रावृत्त हैं। सोरठा देकर कविने उत्तरोत्तर भगवत्कृपाकी प्राप्तिके लिये ज्ञान-बुद्धि-वृद्धिकी कामना की है।

आपके सामने काशीके आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक दो रूप आते हैं।

पिण्ड-ब्रह्माण्ड-न्यायेन श्रीअयोध्याजी मस्तक और काशीजी मध्य स्थान है। मध्य स्थानसे 'हृदय' रूप अर्थ गृहीत होता है। किसी-किसी आचार्यके मतसे आज्ञाचक्र अथवा भ्रू-मध्यको ही काशीकी संज्ञा दी गयी है।

जाबालोपनिषद्के अन्तर्गत पिण्ड—देहमें सभी तीर्थोंका निरूपण हुआ है। तदनुसार नासिका और भ्रू-मध्यके बीच काशीकी स्थिति बतलायी गयी है।

श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्में इस विषयको सुस्पष्ट किया गया है कि अविमुक्तक्षेत्रमें जिन्हें षडक्षर महामन्त्र **( रां रामाय नमः )**-का उपदेश प्राप्त होता है, वे मुक्त हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामका महादेवजीको वरदान है—

**अविमुक्ते तव क्षेत्रे.....।**
× × ×
**.....ये लभन्ते षडक्षरम्।**
**जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥**

(रा० ता० उ० ५,७)

'शंकर! आपके अविमुक्तक्षेत्र काशीमें जिन्हें षडक्षर मन्त्रका उपदेश प्राप्त हो जाता है, वे जीते हुए मन्त्रसिद्ध हो जाते हैं और मरनेपर मुक्त होकर मुझे प्राप्त होते हैं।'

जाबालोपनिषद्के अनुसार यह अविमुक्तक्षेत्र वरणा और नाशीके मध्यमें प्रतिष्ठित है। 'वरणा' का सरलार्थ होता है—**'सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयति इति वरणा।'** अर्थात् जो इन्द्रियोंद्वारा किये गये सम्पूर्ण दोषोंसे बचा लेती है, वह 'वरणा' (नदी) है और 'नाशी'का अर्थ है—**'सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयति इति नाशी।'** अर्थात् जो इन्द्रियादिकोंसे किये गये पाप-समूहोंको नष्ट कर देती है, वह 'नाशी' अर्थात् प्रचलित 'असी' नदी है। इन दोनों नदियोंके संगमपर काशी अवस्थित है।

अब हम रामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डान्तर्गत सोरठापर थोड़ा विचार कर लें—

**मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।**
**जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥**

यहाँ 'कस न'—प्रश्नार्थक है।

तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय तो गोस्वामी तुलसीदासजीका यह समूचा सोरठा जाबालोपनिषद् एवं श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्के निम्नलिखित पाँचों वाक्योंपर ही आधारित माना जा सकता है—

१-इस अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-में शिवजीसे षडक्षर तारक-मन्त्रका उपदेश पाकर प्राणी मुक्त हो जाता है—'**जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते।**'

२-यह काशी ज्ञान-तत्त्वका उपदेश करती है—'**विमुक्तं ज्ञानमाचष्टे।**'

३-काशीवासी सभी (कायिक-वाचिक-मानसिक) पापोंसे तर जाते हैं—'**स पाप्मानं तरति।**' (रामोत्तरतापिनी०)

४-यहाँ रुद्र तारक ब्रह्म—रामनामका उपदेश करते हैं—'**रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे**' (जाबाल०)

५-इसलिये अविमुक्त (काशी)-का सेवन करना चाहिये—'**तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत।**'

गोस्वामीजीके उपर्युक्त सोरठेमें निहित इन्हीं उपनिषद्-वाक्योंका अभिप्रेतार्थ देखिये—

**(१) मुक्ति जन्म महि जानि।**

**(२) ग्यान खानि।**

**(३) अघहानि कर।**

**(४) जहँ बस संभु भवानि** और

**(५) सो कासी सेइअ कस न।**

विनय-पत्रिकामें गोस्वामीजीकी उक्ति है—

**जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति सकल पुरान।**
**सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहि समान॥**

(३।३)

'सबहि समान'में तिर्यग्-योनिगत पशु-पक्षी-कीट-पतंग—सभी समाविष्ट हैं। अन्यत्र कहा गया है—

**कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।**
**मण्डूकमत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति॥**

'स्थलपर अथवा जलमें विचरनेवाले कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष, मेढक, मछली और कृमि आदि जितने भी जीव हैं, वे काशीमें शरीरको त्यागकर भगवान् शिवको प्राप्त होते हैं।'

**आधिभौतिक काशी—**

इसकी सीमा इस प्रकार निर्धारित है—

**दक्षिणोत्तरदिग्भागे कृत्वासिं वरुणां सुराः।**
**क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे तं देहलीविनायकम्॥**

'उत्तरमें वरुणा नदी, दक्षिणमें असी नदी, पश्चिममें देहली-विनायक तथा पूर्व दिशामें गंगाजी।'

इस विस्तीर्ण धरापर काशी एक विलक्षण पुरी है। इसके चार नाम पुराणप्रसिद्ध हैं—काशी, वाराणसी, अविमुक्त और अन्नपूर्णाक्षेत्र। काशीको ही काशिका अर्थात् प्रकाशिका कहते हैं।

ब्रह्मपुराणमें वर्णन आता है—'**पञ्चक्रोशप्रकीर्णं च क्षेत्रम्**'—अर्थात् यह काशी पाँच कोसमें फैली हुई है।

विनय-पत्रिकामें काशीकी एक लम्बी स्तुति है—

**सेइअ सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी।**
**समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल सुमंगल रासी॥**

(२२।१)

कलियुगमें यह काशी सकलाभीष्टोंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु है। अन्तमें लिखा है—

**तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी।**

(२२।९)

'सुपासी' शब्दका अभिप्रेत अर्थ है—यदि सर्वथा मुक्त होना चाहते हो तो। अन्य क्षेत्रोंमें किया हुआ पाप काशी आते ही छूट जाता है। काशीमें किया पाप अन्तर्गृही करनेपर धुल जाता है, पर अन्तर्गृहमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है। काशीमें किये गये पापका दण्ड भी बड़ा कड़ा होता है। यहाँ यमराजका प्रशासन नहीं है। यहाँके प्रशासक दण्डनायक भैरवजी हैं। भैरवी यातनाएँ मृत्युकालमें तारकमन्त्र-प्रदानसे पूर्व ही पूरी हो जाती हैं। काशीके तीर्थोंमें मणिकर्णिका सर्वश्रेष्ठ है। यहीं महादेवजीके कानकी मणि गिरी थी। भगवान् विष्णुके सुदर्शनद्वारा खोदी गयी चतुष्पुष्करिणी यही मणिकर्णिका है। इस तीर्थका प्रभाव अनिर्वचनीय है। स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें काशीके अलौकिक दिव्य स्वरूपकी झाँकी मिलती है—

**भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरध:स्थापि या**
**या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः।**
**या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनीतीरे सुरैः सेव्यते**
**सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्॥**

(१।२)

'जो काशी नगरी भूतलमें विराजमान रहनेपर भी स्वयं भूमि नहीं है, अधोभागमें रहनेपर भी स्वर्गसे भी ऊँची है, भूतलकी सीमाओंसे आबद्ध होनेपर भी मुक्तिदात्री है, जहाँ मरनेवाले जीवमात्र [आप-से-आप] अमृतपदके अधिकारी हो जाते हैं और देवगण भी सदा गंगा-तटपर रहकर जिसका सेवन करते हैं, भगवान् विश्वनाथकी वह राजधानी सर्वदा विघ्न-बाधाओंसे जगत्की रक्षा करती रहे।'

इतना ही नहीं—'**काश्यां मरणान्मुक्ति**' यह सूक्ति सुप्रसिद्ध है। मृत्युकाल उपस्थित होते ही भगवान् भूतभावन विश्वनाथ मुमूर्षु प्राणीको अपनी गोदमें लेकर उसके दक्षिण कर्णमें तारक (**रां रामाय नमः** अथवा '**राम**') मन्त्रका उपदेश करने लगते हैं, उस समय माता अन्नपूर्णा वहीं उपस्थित होकर कस्तूरिका-गन्धसे सुवासित अपने श्वेतांचलकी श्रेष्ठ वायुसे उसकी उत्क्रमण-कालिक व्याकुलता (छटपटाहट)-को मिटाने लगती हैं—

**अनिलो मृगनाभिरेणुगन्धिरधिकाशिः प्रणवोपदेशकाले।**
**हरते भवजं श्रमं नराणां हरवामार्द्धकुचोत्तरीयजन्मा॥**

## भ्रू-मध्यस्थित आध्यात्मिक काशी—

आध्यात्मिक काशी भ्रू-मध्य और नासिकाके बीच है। यहाँ योग-साधकोंको ध्यान करते समय ज्योति-दर्शन होते हैं। यह काशी जन-साधारण-गम्य नहीं, इसके लिये ऊर्ध्वरेता होना आवश्यक है। आद्य शंकराचार्यने अपनी 'सौन्दर्य-लहरी' (९)-में लिखा है—

**मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं**
**सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।**

इसी एकान्तमें—आज्ञाचक्रमें, योगियोंके सहस्रदल कमलमें वह कुल-कुण्डलिनी अपने पति सदाशिवसे लिपटकर(अर्धनारीस्वरूपा) विहार करती रहती है। मनके लिये यह भ्रू-मध्य या द्विदल कमल एक सुदृढ़ खूँटा है। यह छलाँग लगानेवाला बछड़ा (मन) तो यहीं आकर बँध सकता है—अन्यत्र नहीं।

अमृत तथा दिव्य पुरुषकी प्राप्तिके लिये दोनों भौंहोंके बीच अपने प्राणको अच्छी तरह स्थापित करना होता है—

**भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्**
**स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥**

(गीता ८।१०)

विचारणीय तो यह है कि 'सो कासी सेइअ कस न'से गोस्वामीजीका नासिका-भ्रू-मध्यस्थित काशीकी ओर संकेत होता तो वे आजीवन असी-गंगातटपर निवासकर काशी और विश्वेश्वर-लिंगकी आराधना क्यों करते? अच्छा होता, वे अष्टांगयोगकी आठों सीढ़ियोंको यौगिक प्रक्रियासे चढ़कर पार करते, किंतु यौगिक प्रक्रियापर इन सन्तने कहीं भी बल नहीं दिया है। 'सो कासी'से यदि आध्यात्मिक काशीकी ओर ही अवधारणापूर्वक संकेत होता तो 'मानस'की अधोलिखित अर्धालीकी क्या कीमत रह जायगी?—

**कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥**

(रा०च०मा० १।११९।१)

यहाँ तो भगवन्नाम-बल ('राम'-नाम)-की महिमा सुस्पष्टतः प्रकट होती है। मरनेवाले सभी जीव-जन्तु विशोक हो जाते हैं।

गोस्वामीजीके पूर्ववर्ती कट्टर कबीर भी कह गये हैं—

**'जो कबिरा कासी मरै रामहि कौन निहोर।'**

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट ध्वनित होता है कि काशी-मरणसे मुक्ति स्वतः करतलगत हो जाती है।

आध्यात्मिक काशी योगियों-ज्ञानियोंके लिये और आधिभौतिक काशी जन-साधारणके लिये गौ-घाट है, जहाँ सभी जल पीकर परितृप्त होते हैं। 'सो कासी' अर्थात् वह काशी सभीके लिये नित्य सेवनीय है।

संत-चरित—

# सिद्ध हनुमद्भक्त पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदी

( पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय )

मानसके मर्मके सर्वात्मना व्याख्याता व्यासका नाम था पण्डित रामगुलाम द्विवेदी। ये मीरजापुरके निवासी थे। जिस समयमें इनका जन्म हुआ था, आजसे सौ-सवा सौ साल पूर्व, मीरजापुर एक बड़ा व्यापारिक नगर था। जहाँ गंगाके जलमार्गसे बड़ी नौकाओंके द्वारा पटना तथा कलकत्तासे अन्न, लोहा तथा पत्थर आदिका प्रभूत व्यापार होता था। मीरजापुरके मुहल्ला गणेशगंजमें पं० रामगुलाम द्विवेदी रामायणीका निवास था। ये गौतम गोत्रीय कांचनी द्विवेदी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। द्विवेदीजीका वृत्त जनश्रुतिके आधारपर ही किसी लिखित प्रमाणके अभावमें यहाँ दिया जा रहा है।

इनका जन्म मीरजापुरमें ही विक्रम संवत् १८३० (१७७३ ईस्वी)-में हुआ था और निधन वि०सं० १९०८ (१८५१ ईस्वी)-में माना जाता है। इनकी जन्मतिथि बसन्त पंचमी सर्वसम्मत है। निधन संवत्का उल्लेख ज्ञानपुरके प्रसिद्ध विद्वान् पं० महावीरप्रसाद मालवीय वैद्यजीने आग्रहपूर्वक १९०८ विक्रम बतलाया है, जो सर्वमान्य है। इस प्रकार रामगुलामजीका अधिकतम जीवन ७८ वर्षका स्वीकृत होता है।

द्विवेदीजी मीरजापुरमें ही किसी महाजनके यहाँ जमादारी करते थे, उन दिनों बैंकोंका अभाव था। महाजनोंमें लेन-देनके लिये हुण्डी-पुर्जेका व्यवहार था। हुण्डीकी अदायगी नियत तिथिपर चार बजे दिनके पूर्व हो जाती थी। उस समय नोटोंका भी अभाव था। व्यवहारमें रुपया ही चलता था और इसीका पहुँचानेका काम जमादार करते थे, जो विशेषकर ब्राह्मण तथा क्षत्रिय हुआ करते थे। यदि चार बजेतक ऋणोंके पैसे जमा नहीं हुए तो वह महाजन दिवालिया हो जाता था। जमादारका काम रामगुलामजी करते थे। नौकरी तो थी ही। एक दिन इस काममें असावधानी हो गयी और सम्भव था कि इस कारण इन्हें अपनी जीविकासे हाथ धोना पड़ता। भगवान्की अकृत्रिम कृपासे ये बाल-बाल बच गये और जीवनकी नौका डूबने नहीं पायी। यह चमत्कार ही तो था। यह घटना इस प्रकार है।

रामगुलामजी रामकथा सुनने जाया करते थे और पश्चात् अपना काम भी निपटा दिया करते थे। एक दिन ये कथा सुननेमें इतने व्यस्त हो गये कि समयसे हुण्डी पहुँचानेके लिये जा नहीं सके। इसपर इन्हें बहुत दुःख हुआ और अपने मालिकसे क्षमा माँगनेके लिये जा पहुँचे। महाजनने कहा—दुःख करनेकी कोई बात नहीं है। आप भूल रहे हैं। आप मेरे पाससे तोड़े ले गये थे और भरपाई लिखाकर ले आये हैं। महाराजने भरपाईका वह पुर्जा भी दिखाया, जो इस घटनाकी सत्यताका पूरा प्रमाण था। द्विवेदीजीको इतनेसे सन्तोष नहीं हुआ। ये दौड़े-दौड़े भरपाई देनेवाले महाजनके पास भी गये और उससे भी अपनी गलतीकी बात कही। महाजनने कहा—द्विवेदीजी, आप भूल कर रहे हैं। चार बजेसे पहले ही रुपया पहुँचाकर आप मुझसे भरपाई लिखा ले गये हैं। उसने वह रजिस्टर भी दिखलाया, जिसमें उचित समयपर रुपया जमा करनेका स्पष्ट उल्लेख था। इस आश्चर्यजनक घटनाका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। इन्होंने जमादारीका काम एकदम छोड़ दिया, पूरे विरक्त हो गये और रामचरितमानसकी कथा सुनानेका व्यासका काम करने लगे। अपना पूरा समय रामचर्चामें बिताते थे। लोंहदी महावीरके मन्दिरपर और अन्य स्थानोंपर इनकी कथा सुननेवाले अनेक वृद्ध व्यक्ति मीरजापुरमें कभी विद्यमान थे। चढ़ावेके प्रसंगमें ये कहा करते थे—भैया, मैं तो भगवान् सच्चिदानन्द रामचन्द्रका भक्त हूँ। मेरी नाव छोटी है। मुझे अधिक चढ़ावा नहीं चाहिये। अधिक चढ़ावा तो भागवतके पण्डितोंको फबती है।

**द्विवेदीजीको राज-सम्मान**—रामकी भक्तिसे पूर्ण हृदयवाला भक्त रामदरबारका ही सेवक होता है। उनसे ही याचना करता है, दूसरोंसे याचना करना उसे नहीं सुहाता—यही भावना थी रामभक्त रामगुलामजीकी। वह किसी राजाके पास नहीं जाता, प्रत्युत राजा ही उसके पास जाकर उसका भरपूर सम्मान करता है।

यह घटना उनके ही जीवनमें घटी थी, जो इस प्रकार है—कहा जाता है कि १९०० वि०सं० (१८४३ ईस्वी)-में रीवाँके महाराज भगवती विन्ध्यवासिनी देवीके दर्शनार्थ विन्ध्याचल आये। वे रामगुलामजीको जानते थे। उनकी कीर्ति सुन रखी थी। अपने कर्मचारीको व्यासजीको बुलानेको मीरजापुर भेजा। बुलानेपर द्विवेदीजीने एक पत्र लिखकर कर्मचारीको लौटा दिया। वह पद्यबद्ध पत्र इस प्रकार था—

**असि कोऊ करत हँसी।**
**पर्वत शिला कंज बरु जामै, बरु विस स्त्रवै ससी।**
**राम छाड़ि और जो जाँचौं, तो मुँह लाओं मसी।**

इस मार्मिक पत्रको बाँचकर रीवाँ-नरेश गद्‌गद हो गये। वे स्वयं द्विवेदीजीके घर हाथीपर चढ़कर आये। उनके सत्संगसे लाभ उठाया। दक्षिणामें उन्होंने एक कीमती दुशाला तथा पाँच अशर्फियाँ दीं।

चित्रकूटकी भी एक ऐसी ही घटना है। एक बार रीवाँ-नरेश चित्रकूट गये। संयोगसे द्विवेदीजी भी वहीं विराजमान थे। चित्रकूटको तीर्थ समझकर उन्होंने पं० रामगुलामजीको बुलानेके लिये लिख भेजा—

**चित्रकूट रघुनंदन छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥**

स्पष्ट ही यह आनेके लिये निमन्त्रण था, परंतु इसपर द्विवेदीजीने उत्तर लिख भेजा—

**सकल मुनिन्ह के आश्रमहिं जाइ जाइ सुख दीन्ह॥**

यह समुचित उत्तर पाकर राजा द्विवेदीजीसे मिलनेके लिये स्वयं आये और 'नामवन्दना' सुननेके अभिप्रायसे उन्होंने कहा—

**बदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।**

'नामवन्दना' के विषयमें रीवाँ-नरेशके आग्रहको द्विवेदीजीने सहर्ष स्वीकार किया और इस पवित्र कार्यके लिये तीन बजेसे छः बजे दिनका समय निर्धारित किया गया। कहते हैं कि यह सत्संग २२ दिनोंतक चलता रहा। २३वें दिन राजा साहबने कहा कि महाराज, अब इस प्रसंगको समाप्त किया जाय। मैं गृहस्थ हूँ, फलतः मेरे लिये इतना ही बहुत है।

**तपस्यासे मानसार्थकी स्फूर्ति**—प्रतिदिन तीन घंटाके हिसाबसे २२ दिनोंतक नामके महत्त्वका प्रतिपादन करना एक असाधारण-सी घटना है। परंतु इसके औचित्यका रहस्य व्यासजीकी अटूट तपस्यापर आधारित है। पण्डित रामगुलामजी हनुमान्‌जीके नैष्ठिक भक्त थे, जो नियमतः उनका दर्शन एवं पूजन प्रतिदिन किया करते थे। लोंहदी महावीरका दर्शन प्रतिदिन किया करते थे। एक दिन वहाँ जानेका दिनमें अवकाश नहीं मिला। वर्षाकी ऋतु थी। अँधेरी रातमें वह मार्गमें पड़नेवाली नदीको पारकर जानेके लिये उद्यत हुए। उस दिन नदी बाढ़पर थी और उसमें उतरना अपने प्राणोंको संकटमें डालना था, परंतु द्विवेदीजी दर्शन करनेकी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ थे। जब ये जलमें उतरे, तब एक सज्जनने इन्हें रोका। इन्होंने कहा कि मैं हनुमान्‌जीका दर्शन करने जा रहा हूँ, रुकूँगा नहीं। इसपर उस व्यक्तिने अपनेको हनुमान्‌के रूपमें प्रकट किया और घर लौट जानेको कहा। श्रीसमन्वयीजी (जो मीरजापुरके प्रतिष्ठित स्वतन्त्रता सेनानी तथा जननेता थे)-की माता श्रीमती मुकुंदी देवीजी तत्कालीन वृद्धजनोंके मुँहसे सुनी बात कहती थीं कि द्विवेदीजीके दर्शनार्थ नदीमें उतरनेके समय बिजुली कड़की और आकाशमें हनुमानजी प्रकट हो गये। पार जानेसे इन्हें मना किया और घरपर ही हनुमान्‌जीकी मूर्ति स्थापितकर और उसीके पूजन और दर्शनके लिये आदेश दिया। व्यासजीने इस दिव्य दर्शनको आदेश मान लिया। घरपर हनुमान्‌जीकी मूर्ति स्थापित की और इसीके अर्चन-पूजनमें ये अब निरत रहने लगे। इनके द्वारा स्थापित हनुमान्‌जीकी मूर्ति, इनके खड़ाऊँ और कुछ अन्य मूर्तियाँ गणेशगंजके इनके आवासपर आज भी विद्यमान हैं, जिनका विधिवत् पूजन होता है।

श्रीरामचरितमानसकी चौपाइयोंमें व्यासजीको नये-नये अर्थ सूझने लगे। इसी कारण इनकी कथाओंमें एक ही विषयपर भिन्न-भिन्न विचार विभिन्न अवसरोंपर

प्रगट होते थे। व्यासजीकी कथा बड़ी रोचक तथा गम्भीर होती थी। रोचकताका रसास्वादन तो साधारण श्रोता ही किया करते थे। ऐसे मेधावी श्रोताओंमें मुंशी छक्कनलालजी प्रधान थे और सभा-स्थलपर इनके आनेके बाद ही कथाका आरम्भ होता था। ये मुंशीजी रामायणके बड़े मर्मज्ञ थे और इन्होंने रामचरितमानसके पाठकी एक शुद्ध प्रति छपवायी थी, जिसका आदर मानसके गम्भीर गवेषणा करनेवाले आज भी करते हैं।

पं० रामगुलाम द्विवेदीजीका मानसका हस्तलेख बड़ा प्रामाणिक माना जाता है। इनकी प्रतिके अरण्यकाण्डकी पुष्पिकामें कहा गया है—**'लिखितं रामगुलामेन स्वात्मार्थं परार्थमिति।'** इस लिपिका समय १८७५ संवत् दिया गया है। १८७५ वि०—१८१८ ई०। यह हस्तलेख व्यासजीके ४५ सालके वयमें तैयार किया गया था। काशिराज संस्करणवाले रामचरितमानसकी प्रस्तावनाके पृष्ठ १० पर इस प्रतिका उल्लेख है। इस प्रतिकी मीमांसासे स्पष्ट है कि पं० रामगुलामजी साधारण व्यास न होकर सुविज्ञमर्म व्यास थे। तुलसीदासजीद्वारा रचित ग्रन्थोंकी संख्याके विषयमें भी शोधकोंमें ऐकमत्य नहीं है। रामगुलामजीके मतानुसार उनके केवल १२ ही ग्रन्थ थे—रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामाज्ञा प्रश्नावली, दोहावली, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, रामचरितमानस और विनयपत्रिका। द्विवेदीजीके संग्रहके अनुसार पहले काशीमें ये ही प्रकाशित हुए थे।

रीवाँनरेशके समान काशीनरेश भी इनका विशेष आदर-सत्कार करते थे। अन्त समयमें इन्होंने रामनगरमें ईश्वरीप्रसादनारायणजीके सान्निध्यमें रहकर काशीमें ही ऐहिक लीला समाप्त की।

पण्डित रामगुलाम द्विवेदीजी व्यास ही नहीं थे, वे स्वयं कवि भी थे। इनकी अनेक रचनाएँ हैं, जिनमें कवित्तरामायण प्रमुख है। इसके ७ काण्ड हैं और छन्दोंकी (जिसमें धनाक्षरी तथा सवैयोंकी बहुलता है) संख्या २१९ है। इस रामायणका अध्ययन पण्डित रामगुलामजीकी सरस सुबोध रचनाशक्तिका सद्यः परिचायक है। कविता बड़ी सुन्दर है, अभिराम तथा रस-स्निग्ध है। दैन्यके प्रकाशक भाव बड़े आकर्षक एवं आवर्जक हैं। कुछ उदाहरणोंसे इनकी विशेषताका परिचय यहाँ उपन्यस्त है।

**जाके वामभाग में बिराजै मिथिलेस सुता,**
**सहित सनेह सदा छवि की छटा छई।**
**दाहिने रहत जाके लखन अनूप रूप,**
**नख-सिख नीके हेम उपमा न हौं दई।**
**जाके अंग अंग पै अनंग कोटि वारियत,**
**धरे धनु बान पानि विश्व विजई नई।**
**बदत गुलाम राम दया करि दीजै राम,**
**मेरे मन बसै सोई मूरति कृपा मई॥**

कवि गंगाजीसे प्रार्थना कर रहा है कि माता, ऐसी कृपा कीजिये कि यह शरीर तेरे ही तीरपर छूटै। छोटे-छोटे शब्दोंमें मनोरम भावकी बानगी देखिये—

**या बिनती मम देव तरंगिनि, हौ तुम सर्व मनोरथ दाइनि।**
**चाहत अर्थ न धर्म न कामहिं, मोच्छहू पातक पोतक डाइनि।**
**'रामगुलाम' भजौ छल छाँड़ि कै, ठाकुर राम सिया ठकुराइनि।**
**तेरेहि तीर शरीर रहै यहु, जैसेहु कैसेहुँ गँग गुसाँइनि॥**

संसारकी क्षण-भंगुरतापर कविकी सूक्ति पढ़िये—

**या जग जीवन है दिन चारिक, काल कराल गहै कर चोटी।**
**छाड़त राउ न रँकहि कैसेहुँ, देखत है न बड़ी बय छोटी।**
**मान गुमान करै मन में नहिं, काहुहि बोलहु बात न मोटी।**
**रामगुलाम भजौ सिय रामहिं, मैं अरु मोर तजौ मति खोटी॥**

अयोध्यासे प्रकाशित 'रसिक भक्तमाल'का रामगुलामजी प्रशंसक छप्पय उद्धृतकर इस संक्षिप्त परिचयको यहीं समाप्त करता हूँ।

**असनी मिर्जापुर प्रधान दोउ नाम उपासक।**
**वाल्मीकि वक्ता जु एक तुलसीकृत भासक।**
**भाविक प्रवर सुजान संतजन श्रोता जिनके।**
**लोक प्रशंसित विभव विरद किमि कहिए तिनके।**
**परमहंस गुरु कृपा लहि, रामायन सुखधाम पर।**
**जुगल भक्त पंडित प्रवर, नाम जु रामगुलाम वर॥**

# सही प्रवृत्तिसे सहज निवृत्ति

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

जबतक मनुष्यका चित्त शुद्ध नहीं होता, तबतक वह जिसका चिन्तन करना चाहता है, उसका नहीं कर पाता और जिसका नहीं करना चाहता, उसका चिन्तन होता रहता है। जो काम उसे करना चाहिये, उसे नहीं कर पाता और जो नहीं करना चाहिये, उसे करता है।

इसलिये साधकको चाहिये कि जिस समय जो काम उसे कर्तव्यरूपमें प्राप्त हो, उसके करनेमें अपनी विवेकशक्ति और क्रियाशक्तिको पूर्णरूपसे लगाकर पूर्ण धैर्य, उत्साह और सावधानीके साथ जिस ढंगसे उसे करना चाहिये, वैसे ही करे। उसके करनेमें न तो आलस्य करे और न जल्दबाजी करे। हर एक प्रवृत्तिके आरम्भमें यह विचार कर ले कि जो काम मैं करना चाहता हूँ, उससे किसीके अधिकारका अपहरण तो नहीं होता है? वह किसीके अहितका कारण तो नहीं है? यह सोचकर अपने प्रभुकी सेवाके नाते उस कामको कुशलतापूर्वक पूरा करे। ऐसा कोई काम न करे, जिससे भगवान्‌का सम्बन्ध न हो, जो भगवान्‌की आज्ञा और प्रेरणाके विरुद्ध हो।

प्रवृत्तिके बाद निवृत्तिका आना अनिवार्य है। अत: जो काम कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो, उसे उपर्युक्त प्रकारसे पूरा कर देनेपर निवृत्तिकालमें साधकके चित्तकी स्थिरता और अपने प्रेमास्पदके प्रेमकी लालसाकी जागृति अवश्य होती है। अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन अपने-आप शान्त हो जाते हैं।

कोई भी काम छोटा-बड़ा नहीं है। जिस कामको लोग साधारण और छोटा कहते हैं, वह कुशलतापूर्वक ठीक—जैसे, जिस भावसे करना चाहिये, वैसे किया जानेपर वह साधकके लिये किसी भी उत्तम-से-उत्तम माननेवाले कामसे कम नहीं रहता; क्योंकि कर्म करनेकी आवश्यकता किसी प्रकारके फलकी कामनाके लिये नहीं, किन्तु कर्तामें जो क्रियाशक्तिका वेग है, उसे पूरा करनेके लिये है।

उक्त भावसे कर्म करनेपर कर्तापन और भोक्तापन अपने-आप विलीन हो जाते हैं। जो उद्देश्य बड़े-बड़े साधनोंसे कठिनाईके साथ बहुत कालमें पूरा नहीं होता, उसकी सिद्धि अनायास थोड़े ही समयमें अपने-आप हो जाती है।

कर्मके रहस्यको न जाननेके कारण साधारण मनुष्य, जो काम जिस समय करना चाहिये, उसे उस समय नहीं करते एवं जब करते हैं, तब उसे भाररूप समझकर, जैसे-तैसे पूरा कर देनेके भावसे करते हैं। पूरी शक्ति लगाकर नहीं करते। अत: उनका राग नष्ट नहीं होता। इससे जिस कालमें वे कर्मसे निवृत्त होते हैं, उस कालमें भी उनके अन्त:करणमें नाना प्रकारके व्यर्थ संकल्पोंकी स्फुरणा होती रहती है; क्योंकि उनमें क्रियाशक्तिका वेग बना रहता है अथवा काल आलस्य या निद्रामें चला जाता है।

मनुष्य-जीवनका समय सब-का-सब अमूल्य है, अत: उसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। उसमें भी जो निवृत्तिकाल है, जिस समय मनुष्यके सामने कोई योग्य कर्म नहीं रहता, वह समय तो खास तौरपर अपने परम प्रेमास्पद प्रभुका स्मरण-चिन्तन करते हुए उनके प्रेममें डूबे रहनेका ही है। ऐसे मौकेमें यदि साधकके चित्तमें अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन होता रहे या तमोगुणकी वृद्धि होकर वह समय जडतामें व्यतीत हो जाय तो इससे बढ़कर दु:ख देनेवाली भूल क्या हो सकती है? इसलिये साधकको चाहिये कि उसे जो कर्म कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो, उसको भगवान्‌के नाते, उनकी आज्ञा और प्रेरणाके अनुसार उनकी दी हुई शक्तिका कुशलतापूर्वक प्रयोग करके पूरा करता जाय। जैसे-जैसे साधक प्राप्त-कर्तव्यको ठीक-ठीक पूरा करता जाता है, वैसे-ही-वैसे उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ निवृत्तिमें बदल जाती हैं।

जो काम जिस प्रकार करना चाहिये, उस प्रकार धैर्य और उत्साहपूर्वक सावधानीसे न किया जानेपर उसका परिणाम स्वास्थ्यके लिये तथा समाज और देशके लिये भी हितकर नहीं होता। इस दृष्टिसे भी साधकको हर एक काम, चाहे वह खान-पान-सम्बन्धी साधारण हो, चाहे परिवार, समाज, देशसे सम्बन्ध रखनेवाला

हो—ठीक-ठीक करना चाहिये।

जिस समय साधक बिना कर्म किये रह सके अर्थात् उसे न तो कोई काम कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो और न किसी कामको करनेके लिये किसी प्रकारकी क्रियाशक्तिका वेग हो, उस समय कर्मका करना आवश्यक नहीं है। कर्म करनेकी बात तो उसी समयके लिये कही जाती है, जब साधकको कर्म करना आवश्यक हो जाय।

सही प्रवृत्ति होनेपर सहज निवृत्ति स्वतः प्राप्त होती है। सहज निवृत्ति ज्यों-ज्यों स्थायी और स्थिर होती जाती है, त्यों-ही-त्यों मनमें स्थिरता, हृदयमें प्रीति और विचारका उदय अपने-आप होता जाता है, जो कि मानवकी माँग है।

# साक्षीभाव

( ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतीय धर्मसंघ )

साक्षीभाव, द्रष्टाभाव अथवा विपश्यना—ये तीनों समानार्थक शब्द हैं, परंतु हैं बहुत गहरे। लिखने, पढ़ने अथवा बोलनेमें जितने आसान हैं, जीवनके व्यवहारिक धरातलपर उतारनेमें उतने ही कठिन हैं। साक्षीभावपर केवल चर्चा ही नहीं करना, केवल विचार ही नहीं करना, ये शब्द व्यापारमात्र नहीं, यह ऊहापोहका, तर्क-वितर्कका, शाब्दिक व्यायाम नहीं, अपितु जीवन जीनेकी कलाका उत्कृष्टतम राजपथ है। इस राजमार्गपर चलनेवालेका कभी पराभव हो नहीं सकता। जिस प्रकार कोई समझदार गम्भीर सत्यद्रष्टा व्यक्ति सागरकी ऊपरी सतहपर अठखेलियाँ करती, उठती-गिरती, उत्पन्न होती-मरती, किनारेपर दूरतक फैलती-सिमटती लहरोंको देखकर शान्त रहता है, उनके बढ़नेसे खुश नहीं होता और लहरोंके घटने या मिटनेसे दुखी नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि लहरें काल्पनिक हैं तथा जल वास्तविक है। जब लहरें हैं ही नहीं, तब उनके जन्म अथवा मृत्युका, उत्थान तथा पतनका, उन्नति तथा अवनतिका, घटने अथवा बढ़नेका तो प्रश्न ही नहीं बनता। बुद्‌बुद, फेन, तरंग—ये सब कुछ जल ही है। जलमें ही भासित है। इनका आधार जल ही है। जल न हो तो न तरंग, न बुद्‌बुद, न फेन, कुछ न होगा। तब कोई समझदार व्यक्ति तरंगोंके प्रीति-मिलन अथवा तरंगोंकी टकराहटको सच्चा कैसे मान सकता है? वह तो इस खेलको जी भरकर निहारता हुआ जलकी विविध क्रिया-प्रतिक्रियाओंको नाम-रूपोंके प्रपंचको मनोरंजनका साधन मानकर निःशब्द आनन्दमें ही रहेगा। अचानक कोई छोटे बच्चे लड़ते-झगड़ते उस व्यक्तिके पास आकर शिकायत करें कि श्रीमान्! एक लहरने दूसरी लहरको पीट दिया, आप उनका झगड़ा मिटाओ। पूरे सागरमें जरा-सी बातपर भगदड़ मची है, लहरें एक-दूसरेके पीछे भागकर उठापटक कर रही हैं, प्लीज आप इनका विवाद दूर कराकर समझौता कराओ। आप ही सोचो! वह सुभद्र व्यक्ति बच्चोंकी बातें सुनकर क्या करेगा—

(१) झटसे उठकर लहरोंको समझाने दौड़ पड़ेगा।

(२) बच्चोंका मन रखनेको शान्तिसे दो-चार कदम सागरकी ओर चलेगा।

(३) बच्चोंको देखकर जी भरकर हँसेगा।

(४) केवल देखेगा, मुसकरायेगा और शान्त हो जायगा।

(५) बच्चोंको उपदेश देकर इसका रहस्य बतायेगा।

(६) उनसे कहेगा—बिना बोले चुपचाप इस खेलको सिर्फ देखो, देखो और देखो, और बालक यदि साक्षीभावसे, द्रष्टाभावसे उन लहरोंको देखने लगेंगे तो उनकी समझमें सच आ जायगा। अपनी नादानीपर हँसी आयेगी। प्रश्नोंकी निरर्थकता स्वतः सिद्ध हो जायगी। सचमुच ये सब जगत्‌का प्रपंचमात्र है। जीवन-मरण, उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, संयोग-वियोग, हार-जीत, मान-अपमान, सफलता-असफलता, लाभ-हानि, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, धूप-छाँव, दिन-रात, नरक-स्वर्ग, अनुकूलता-प्रतिकूलता सब कुछ जलमें उठी लहरोंके खेल-जैसा ही है। इन सबका आधार एकमात्र चिन्मय ब्रह्म ही है। ब्रह्ममें ही यह सकल प्रपंच भासित

हो रहा है। ब्रह्म ही इसका आधार है। ब्रह्मके आश्रयके बिना यह कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार जलके बिना लहर, बुद्‌बुद, फेन नहीं हो सकते, ठीक वैसे ही ब्रह्म सत्ताके आश्रयके बिना विविध नामरूपात्मक यह जगत् स्वप्नमें भी सम्भव नहीं। जब जगत् है ही नहीं, तब इससे मिलनेवाले सुख-दु:खसे हम हर्ष अथवा शोकको सत्य मानकर मुसकराते-रोते क्यों हैं? यही समझना है, इसीको सिर्फ देखना है। तमाशा देखो, तमाशा बनो मत। (तमाशा खुद न बन जाना, तमाशा देखनेवालों) द्रष्टा बनो, दृश्य नहीं। आप जितना अधिक द्रष्टाभावको परिपुष्टकर जीवनमें उतारोगे, उतना ही जीवनकी उलझनें सुलझती चली जायँगी। हम विषम-से-विषम परिस्थितिमें भी शान्त-संयत रह सकेंगे।

**प्रश्न**-हम कैसे अचानक सुख-दु:खसे लबालब इस जगत्‌को काल्पनिक कह सकते हैं? जबकि चोट लगती है तो दर्द होता है, भूख-प्यासका अहसास होता है। मुसकराहट तथा अश्रुप्रवाह इस जगत्‌की यथार्थताका प्रमाण भी देते हैं।

**उत्तर**-भाई! ये सारी घटनाएँ तो सपनेमें भी घटती हैं। वहाँ भी भूख-प्यास, रोना-हँसना, जीना-मरना देखा जाता है, परंतु केवल तबतक ही जबतक कि आँख नहीं खुलती। जगते ही सपनोंका संसार खतम हो जाता है। ठीक वैसे ही जबतक मोह-मायाकी निद्रामें जीव फँसा है, तभीतक यह जगत् सच्चा-सा लगता है, जैसे ही किसी सन्तकी कृपासे ज्ञानद्वारा मोहाज्ञाननिद्रा खत्म होगी, यह जगत्‌का तमाशा भी खत्म हो जायगा। परंतु ये होगा केवल साक्षीभावसे, द्रष्टाभावकी साधनासे।

**द्रष्टाभावकी साधना क्या है**—सर्वप्रथम एकान्त शान्त स्वच्छ स्थानपर सुखासन अथवा पद्मासनमें बैठकर नेत्र बन्द करके सहजतासे गहरी श्वास लें। (श्वासकी आवाज न हो) तदनन्तर पूरे संसारसे मन हटाकर केवल खुदको अपने शरीरको ही देखें। यह शरीर कैसा है? क्यों है? कहाँसे आया? कहाँ जायगा? कबसे है? कबतक रहेगा? शरीरसे पहले क्या था? शरीरके बाद क्या रहेगा? इस शरीरमें है क्या? क्या मैं शरीर हूँ? अथवा शरीरसे भिन्न हूँ? यदि शरीर और मैं एक हैं तो शरीर क्यों बदला? मैं क्यों नहीं बदला? बचपन, जवानी, बुढ़ापा—ये शरीरके धर्म हैं या आत्माके? यदि मैं (आत्मा) शरीरसे अलग हूँ तो चोट लगती शरीरको है, फिर क्यों रोता है? कौन रोता है? गम्भीरतासे इन प्रश्नोंपर विचार करना, घबराना नहीं कि कितने सारे प्रश्न हैं। इनका उत्तर मैं नहीं जानता। आप शान्तभावसे चिन्तन करो, उत्तर खुद ही अन्दरसे आते जायँगे। अब अग्रिम क्रममें अपने श्वासोंको ही देखना है। श्वास कहाँसे उठा? कहाँतक जा रहा है? नाभिदेशतक हमारा श्वास जाकर पूरे शरीरकी नकारात्मक ऊर्जाको नाकके रास्तेसे बाहर निकाल रहा है तथा सकारात्मक स्वच्छ वायुको पुन: अन्दर भर रहा है। नाड़ीशोधनके साथ श्वास-प्रश्वासकी यह क्रिया चल रही है, इसको देखना है। श्वास आ-जा रही है—मानो लहर सागरके ऊपर उठ रही है, गिर रही है। शरीरको देखो, श्वासको देखो, इन्द्रियोंको, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकारको सूक्ष्म दृष्टिसे देखो। जब आपको कामका वेग आ रहा हो, तब स्वयंको देखो, यह कामरूपी तूफान, कहाँसे आ रहा है? जब आपको क्रोध आये, तब अपना अनुशीलन करो, यह क्रोध कहाँसे आया, क्यों आया, क्या करने आया? लोभ, मोह, घृणा, प्रेम आदि इन अवस्थाओंको सावधानीसे देखो, ये क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? क्रोधसे भरे हुए किसी इंसानको गौरसे देखो, कैसा लग रहा है? सोचो, यह परेशान क्यों है? इसकी आँखें लाल, होठ फड़फड़ा रहे हैं, शरीर काँप रहा है, आवाज विषैली, कर्कश, भद्दी, गंदी हो रही है, शब्द अंगारे-जैसे बरस रहे हैं। क्रोधावस्थाकी इस कुरूपताको हमें अपने जीवनमें नहीं आने देना है। द्रष्टाभावकी साधनाका आशय है—उसको खोजना, जो जगते समय भी देख रहा है, सपना देखते समय भी देख रहा है तथा सोनेके समय भी देख रहा है। द्रष्टा समझमें आ गया तो संसारका कोई झमेला क्लेश रहेगा ही नहीं।

एक बार राजा जनकने एक विचित्र सपना देखा, वे सपनेमें भूखसे व्याकुल भिखारीके वेषमें लोगोंसे रोटी माँग रहे हैं। लोग उनको तिरस्कारकी नजरसे देखते, अपशब्द बोलते, सलाह तो देते, परंतु सहायता करनेको आगे कोई

नहीं आता था। अचानक राजा जनककी नींद खुल गयी। वे जगनेपर देखते हैं कि मैं तो राजमहलमें हूँ, मैं तो राजा हूँ। मुझको भूख भी लगी नहीं। भीख माँगनेका तो प्रश्न ही नहीं बनता। साधारण इंसान होता तो स्वप्नगत दृश्यको—दु:खको हँसीमें उड़ाकर भूल जाता, परंतु राजा जनक चिन्तित हो उठे। गम्भीर होकर विचार करने लगे, यदि सपना झूठा था तो घटित क्यों हुआ? क्या मेरे मनमें अभी भी संसारकी भूख शेष है? क्या मैं अब भी एक भिखारी ही हूँ। मैं राजा हूँ अथवा भिखारी? भिखारीपनका सपना सच था अथवा राजपनका यह दृश्य सच है? बस, राजाका मन बेचैन हो गया। वह सच था कि यह सच है? राजसभामें आते ही राजपण्डितोंके सम्मुख राजाने पहेलीनुमा प्रश्न रख दिया, महाराज! वह सच था या यह सच है? कोई उत्तर न दे सका। लोग समझ ही न पाये कि मामला क्या है? अष्टावक्रजी महाराज पधारे, राजाने नमन किया तथा प्रश्न कर दिया, गुरुदेव! वह सच था कि यह सच है?' प्रश्न सुनते ही आठ अंगोंसे वक्र (टेढ़े) ज्ञानवृद्ध अष्टावक्रजी ने प्रगाढ़ प्रीतिके साथ राजा जनकको देरतक अपलक देखा, मानो राजाकी आँखोंके रास्तेसे उनके दिलमें उतरकर सब कुछ जान लेनेकी भावना उनके मनमें हो और सहसा मुसकराते हुए अद्वैतपथपथिक वेदान्तसिद्धान्तकाननमें पंचानन श्रीअष्टावक्रजी महाराज बोले—हे राजन्! न वह सच था, न यह सच है। राजाको लगा कि बाबाने बिना समझे उत्तर दे दिया है। अत: कुछ बोलनेको उत्सुक राजाके दृष्टिदर्पणमें तैरते प्रश्नोंको समझकर श्रीअष्टावक्रजी महाराज पुन: बोले, राजन्! जितना मिथ्या (कल्पित) स्वप्नमें भिखारी बनना है, उतना ही मिथ्या जाग्रत्में राजा बनना है। तुम न ही राजा हो, न ही भिखारी। न पुरुष हो न स्त्री। न युवा हो न वृद्ध। न गोरे हो न काले। अरे राजन्! तुम तो नित्य शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यस्वरूप निर्मल आत्मा हो। राजा जनकने विविध प्रश्न किये, अन्तमें महाराज अष्टावक्र बोले, राजन्! जिसने सपना देखा, वह कौन था? और जो अब तुमको राजाके रूपमें देख रहा है, वह कौन है? यदि यह शरीर राजा अथवा भिखारी है, तो देखो सपनेमें यह शरीर तो महलमें था, विश्राममें था, सुन्दर वस्त्र पहने था, सुस्वादु दिव्य पदार्थोंका भोग लगानेसे पूर्ण तृप्त था और अब स्वयं देख लो तुम राजा हो कि रंक। जाग्रत्में जो सजग है, सपनेमें भी जो सजग है और सो जानेके बाद भी जो जग रहा है, वह साक्षी चेतन द्रष्टा आत्मा तुम हो। दृश्य बदले, दिखने-वाले बदले, परंतु द्रष्टा (देखनेवाला) नहीं बदला। जो बदलता है, कभी है कभी नहीं, वह झूठा है। जो नहीं बदलता, वही सच है। वही साक्षी है। वही द्रष्टा है। इसी साक्षीभाव द्रष्टाभावकी साधनाको ही विपश्यना भी कहते हैं।

पश्य=देख, पश्यना=देखना, वि+पश्यना=विशेष प्रकारसे देखना। **विशेषेण पश्यति येन विधिना तस्यैव संज्ञा विपश्यना।** शरीरप्राप्तिसे पूर्व आत्मा, शरीर नष्ट होनेके अनन्तर आत्मा, शरीरके रहते भी आत्मा ही सत्य है; क्योंकि वही अपरिवर्तनीय है। जैसे घड़ा बननेसे पहले भी मिट्टी है, घड़ा फूटनेके उपरान्त भी मिट्टी है और घड़ेके रूपमें भी मिट्टी ही है। नाम-रूप बदले, परंतु मिट्टी एक रही, वैसे ही जब आपके जीवनमें झंझावात आये, आपका प्रिय मित्र धोखा देकर किसीके साथ चला जाय, आपका पुत्र अथवा पिता अथवा पति अथवा पत्नी अथवा वह, जिसपर आपको बहुत भरोसा था, वह आपको छोड़ जाय अथवा व्यापारमें भारी घाटा लग जाय, शेयर मार्केटमें पैसा डूब जाय, जेब कट जाय, दुनियामें बड़ी भारी बदनामी हो जाय, उन पलोंमें जब ये लगे कि जीवन बेकार है, जी नहीं सकता, मर ही जाना चाहिये, तब कृपया एक बार ठंडी साँस लेकर शीतल जल पीकर अपने सिरको झटकना, शान्तभावसे लम्बी गहरी केवल दस बार भरपूर साँस लेना और खुदसे पूछना तू क्या है? जन्मके समय तेरे पास क्या था? तेरे साथ कौन था? जब इस दुनियाको छोड़ेगा, तब तेरे साथ क्या होगा? और कौन-कौन साथ होंगे? अकेला था अकेला ही जायगा। अकेला आया, अकेला ही जायगा। खाली हाथ आया, खाली हाथ जायगा। नंगा आया और नंगा ही जायगा। तब जो हुआ, उसे हो जाने दो, उठकर खड़े हो, फिर अपने जीवनमें खुशियोंके रंग सजाओ और आनन्दका जीवन जिओ।

# साधनोपयोगी पत्र

(१)

## जीव और आत्मा

प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था, किंतु समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) जीव और आत्मामें वास्तवमें कोई भेद नहीं है। बद्धावस्थामें जिसको जीव कहते हैं, वही स्वरूपसे आत्मा है।

(२) आत्मा या जीव ब्रह्मका अंश है, न कि पूर्णब्रह्म है। उपासना करनेसे पूर्णब्रह्मके स्वरूपकी प्राप्ति हो सकती है। पूजा तो जिसका लक्ष्य करके की जाती है, उसकी होती है, मनुष्य या अन्य प्राणीकी पूजा यदि ईश्वरकी आज्ञा मानकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये की जाती है तो वह भी ईश्वरकी ही पूजा होती है, परंतु यदि हम किसी प्राणीसे या मनुष्यसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये उसकी पूजा करते हैं, तो वह पूजा ईश्वरकी पूजा नहीं है। इसलिये उसका महत्त्व ईश्वर-पूजाके समान नहीं हो सकता। पूजा आत्माकी नहीं की जाती, शरीरकी की जाती है। शरीर ब्रह्म नहीं होता, अत: विचार करना चाहिये।

(३) ईश्वरने सृष्टिकी रचना प्राणियोंके अच्छे-बुरे कर्मोंका फल भुगतानेके लिये की। इसलिये ईश्वरमें किसी प्रकारका दोषारोपण नहीं किया जा सकता। जन्म-मरणके बन्धनसे छूटनेके लिये ही ईश्वरने कृपा करके मनुष्यका शरीर दिया और छूटनेका उपाय बताया। इसपर भी लोग छूटना नहीं चाहते तो क्या उपाय?

(४) आप जो यह सोचते हैं कि देश और गरीबोंकी सेवा करनी चाहिये, यह बहुत अच्छी बात है। यह काम यदि ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये किया जाय तो अवश्य ही ईश्वर प्रसन्न होते हैं, पर यदि गरीब और असहायोंको अपनेसे हीन समझकर अपनेमें दातापनका अभिमान करके उनकी सेवा की जाय तो वह एक शुभ कर्मकी श्रेणीमें जायगा। उससे ईश्वरकी वह प्रसन्नता प्राप्त नहीं होगी, जिसका फल ईश्वरकी प्राप्ति या जन्म-मरणके बन्धनसे छूटना है। नाम-जप तो ईश्वरस्मृतिके लिये किया जाता है, वह गरीबोंकी सेवामें बाधक नहीं है। वह तो अन्त:करणको पवित्र करता है, ईश्वरमें प्रेम उत्पन्न करता है, सेवा-भावको जाग्रत् करता है। अत: उसके साथ देश-सेवा आदिकी तुलना नहीं की जा सकती।

(५) प्रकृति और जीवात्माको परमेश्वरका शरीर मानना और ईश्वरको जीवात्माका भी आत्मा मानना एवं प्रकृति और जीव—इन दोनों शक्तियोंसे युक्त एक परमेश्वरको मानना—यह विशिष्टाद्वैतका सिद्धान्त है। इस विषयमें आप अधिक क्या जानना चाहते हैं, सो लिखें।

(६) आत्मा ब्रह्मका अंश है, ब्रह्म अंशी है। अत: वास्तवमें अभेद होनेपर भी शक्तिमें बड़ा भारी अन्तर है। शक्ति और सामर्थ्यका नाप-तौल प्राकृत जगत्को सामने रखकर किया जाता है, जो कि सबकी सब रचना उस परमेश्वरके संकल्पमात्रसे होती रहती है। इसपर विचार करनेवाला और उसकी बुद्धि—ये सब उस परमात्माकी रचनाका एक क्षुद्रतम अंश है, वह उसकी महिमाका पार कैसे पा सकता है, उसकी बुद्धि वहाँतक कैसे पहुँच सकती है?

(७) जीवात्मा परमात्माका अंश है—यह वेद और उपनिषदोंमें जगह-जगह लिखा है। वह एक ही ईश्वर अपने अंशभूत अनेक और असंख्य जीवोंको उनके कर्म और वासनाके अनुसार विभिन्न योनियोंमें उत्पन्न करता है और उनके कर्मफलोंका विधान करता है। अद्वैतवादके अनुसार इस विषयमें आप क्या जानना चाहते हैं, स्पष्ट लिखें। शेष प्रभुकृपा।

(२)

## हनुमान्‌जी और रावणका स्वरूप

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। 'वाल्मीकीय रामायण' संस्कृतमें है, यह तो आप जानते ही होंगे। कोई भी विद्वान् या संस्था किसी

ग्रन्थका अर्थ तोड़-मरोड़कर अपनी धारणाके अनुसार कर डाले या उसपर मनमानी टिप्पणी लिख दे, इसका तो कोई उपाय नहीं है। अवश्य ही श्रीहनुमान्‌जी आजकल-जैसे सामान्य बन्दर नहीं थे, यह तो सब मानते हैं, परंतु वे थे वानरजातिके ही। वाल्मीकीय रामायणमें उनके लिये बार-बार 'कपि', 'महाकपि', 'कपिकुंजर', 'प्लवंग', 'वानर' शब्द आये हैं। इन शब्दोंका अर्थ आप किसी शब्दकोषमें देख सकते हैं। हनुमान्‌जीका गोत्र वानर था—ऐसी बात कहीं नहीं लिखी है। इसी प्रकार 'पूँछ' या 'लांगूल' शब्दका अर्थ झंडा या चाबुक नहीं होता। यह भी आप जानते होंगे। हनुमान्‌जी सदा झंडा या चाबुक लिये रहते थे—ऐसा कहीं कोई वर्णन नहीं है।

**'तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः।'**

(सुन्दर० १।३४)

**'एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः।'**

(सुन्दर० १।४३)

**'सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः।'**

(सुन्दर० १।४३)

**'स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः।'**

(सुन्दर० १।५)

**'लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते।'**

(सुन्दर० १।६०)

**'लाङ्गूलचक्रेण महान्.....।'**

(सुन्दर० १।६१)

हनुमान्‌जीकी पूँछमें पुराने रूईके कपड़े लपेटकर उनमें आग लगानेका स्पष्ट वर्णन है। उदाहरणके लिये डेढ़ श्लोक यहाँ दिया जाता है—

**कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम्।**
**तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु॥**
**वेष्टयन्ति स्म लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासकैः पटैः।**

इन उदाहरणोंके होते भी कोई मनमाना अर्थ करे—ऐसे अर्थ, जो उस शब्दसे किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं रखते—तो उसके अर्थको एक दुराग्रहपूर्ण प्रयत्न ही कहा जायगा।

हनुमान्‌जी 'पवन-पुत्र' थे। इसीसे उनका एक नाम 'मारुति' पड़ा, जो वाल्मीकीय रामायणमें बार-बार आया है।

**'विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन्।'**

(सुन्दर० ३।१३)

उन्हें 'वातात्मज, मारुतात्मज' कहा गया है—

**'आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान् मारुतात्मजः।'**

(सुन्दर० ४३।३)

**'ततो वातात्मजः श्रद्धा.....॥'**

(सुन्दर० ४३।१५)

इससे उनका 'पवनपुत्र' होना वाल्मीकीय रामायणमें सिद्ध है। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण या किसी प्राचीन ग्रन्थमें ऐसा एक भी शब्द या वाक्य नहीं है—जिससे यह कहा जाय कि रावण चार वेद, छः शास्त्रका ज्ञाता होनेसे दशमुख तथा पूरा बलवान् होनेसे 'बीसभुजा' का कहा जाता था। वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता ऋषियोंमेंसे कोई दशशिर नहीं कहा जाता और परशुरामजी-जैसे पराक्रमी भी बीस तो क्या चार भुजाके भी नहीं कहे जाते। अतः ये सब निराधार कल्पनाएँ हैं। रावण बहुरूपिया भी नहीं था। वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट उसके दस मस्तक, बीस भुजाका उल्लेख है। अवश्य ही वह कामरूप 'इच्छानुसार रूपधारणकी शक्ति रखनेवाला' भी था। रावणकी उत्पत्तिके समय उसके रूपका यह वर्णन है—

**दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम्।**
**ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम्॥**

(उत्तर० ९।२८)

उत्पन्न होते ही रावण चार वेद, छः शास्त्रका विद्वान् नहीं हो गया होगा। वाल्मीकीय रामायणमें अनेकों स्थानोंपर उसे दशग्रीव, विंशतिभुज बताया गया है। वह एक साथ दस धनुष उठाकर युद्ध करता था—यह भी स्पष्ट वर्णन है। आप अधिक प्रमाण एवं वाल्मीकीय रामायणका ठीक अर्थ देखना चाहें तो जिसमें रामायणके श्लोकोंका अर्थमात्र दिया गया हो—ऐसी रामायण पढ़नी चाहिये। किसी पुस्तकालयसे लेकर सटीक वाल्मीकीय रामायणका अध्ययन करें।

श्रीभरतजी महाराज भगवान् श्रीरामके प्रभावसे परिचित थे। वे जानते थे कि लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामजी रावणको मारकर ही आयेंगे। इसीसे वे रामजीके आज्ञापालनार्थ नन्दिग्राममें रहे, लंका नहीं गये। शेष प्रभुकृपा।

# व्रतोत्सव-पर्व

## सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, अधिक आश्विन-कृष्णपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें ३। २२ बजेतक | शुक्र | रेवती अहोरात्र | २ अक्टू० | **महात्मागाँधी-जयन्ती।** |
| द्वितीया रात्रिशेष ५। २८ बजेतक | शनि | रेवती दिनमें ८। ३४ बजेतक | ३ ,, | **मेषराशि** दिनमें ८। ३४ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें ८। ३४ बजे। |
| तृतीया अहोरात्र | रवि | अश्वनी ,, ११। १२ बजेतक | ४ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ६। ३० बजेसे, **मूल** दिनमें ११। १२ बजेतक। |
| तृतीया प्रात: ७। ३२ बजेतक | सोम | भरणी ,, १। ४५ बजेतक | ५ ,, | **भद्रा** प्रात: ७। ३२ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ८। १९ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७। ५४ बजे। |
| चतुर्थी दिनमें ९। २३ बजेतक | मंगल | कृत्तिका सायं ४। ५ बजेतक | ६ ,, | × × × × |
| पंचमी ,, १०। ५५ बजेतक | बुध | रोहिणी ,, ६। २ बजेतक | ७ ,, | × × × × |
| षष्ठी ,, १२। ० बजेतक | गुरु | मृगशिरा रात्रिमें ७। ३४ बजेतक | ८ ,, | **भद्रा** दिनमें १२। ० बजेसे रात्रिमें १२। १९ बजेतक, **मिथुनराशि** प्रात: ६। ४९ बजेसे। |
| सप्तमी ,, १२। ३८ बजेतक | शुक्र | आर्द्रा ,, ८। ३७ बजेतक | ९ ,, | **कालाष्टमी।** |
| अष्टमी ,, १२। ४२ बजेतक | शनि | पुनर्वसु ,, ९। ९ बजेतक | १० ,, | **कर्कराशि** दिनमें ३। ० बजेसे, **चित्रामें सूर्य** रात्रिशेष ४। ४ बजे। |
| नवमी ,, १२। १८ बजेतक | रवि | पुष्य ,, ९। १२ बजेतक | ११ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ११। ५१ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ९। १२ बजेसे। |
| दशमी ,, ११। २४ बजेतक | सोम | आश्लेषा ,, ८। ४७ बजेतक | १२ ,, | **भद्रा** दिनमें ११। २४ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें ८। ४७ बजेसे। |
| एकादशी ,, १०। ४ बजेतक | मंगल | मघा ,, ८। १ बजेतक | १३ ,, | **पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत ( सबका ), मूल** रात्रिमें ८। १ बजेतक। |
| द्वादशी ,, ८। २४ बजेतक | बुध | पू० फा० ,, ६। ५४ बजेतक | १४ ,, | **कन्याराशि** रात्रिमें १२। ३३ बजेसे, **प्रदोषव्रत।** |
| त्रयोदशी प्रात: ६। २५ बजेतक | गुरु | उ०फा० सायं ५। ३२ बजेतक | १५ ,, | **भद्रा** प्रात: ६। २५ बजेसे रात्रिमें ६। १८ बजेतक। |
| अमावस्या रात्रिमें १। ५१ बजेतक | शुक्र | हस्त ,, ३। ५८ बजेतक | १६ ,, | **तुलाराशि** रात्रिमें ३। ८ बजेसे, **अमावस्या, अधिकमास समाप्त।** |

## सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, शुद्ध आश्विन-शुक्लपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें ११। २७ बजेतक | शनि | चित्रा दिनमें २। २० बजेतक | १७ अक्टू० | **शारदीय नवरात्रारम्भ, तुलासंक्रान्ति** रात्रिमें ९। १४ बजे। |
| द्वितीया ,, ९। ४ बजेतक | रवि | स्वाती ,, १२। ३९ बजेतक | १८ ,, | **वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ५। २६ बजेसे। |
| तृतीया ,, ६। ४७ बजेतक | सोम | विशाखा ,, ११। ३ बजेतक | १९ ,, | **भद्रा** रात्रिशेष ५। ४३ बजेसे। |
| चतुर्थी सायं ४। ३९ बजेतक | मंगल | अनुराधा ,, ९। ३६ बजेतक | २० ,, | **भद्रा** सायं ४। ३९ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** दिनमें ९। ३६ बजेसे। |
| पंचमी दिनमें २। ४८ बजेतक | बुध | ज्येष्ठा ,, ८। २२ बजेतक | २१ ,, | **धनुराशि** दिनमें ८। २२ बजेसे। |
| षष्ठी ,, १। १७ बजेतक | गुरु | मूल प्रात: ७। २९ बजेतक | २२ ,, | **मूल** प्रात: ७। २९ बजेतक। |
| सप्तमी ,, १२। ९ बजेतक | शुक्र | पू०षा० ,, ६। ५४ बजेतक | २३ ,, | **भद्रा** दिनमें १२। ९ बजेसे रात्रिमें ११। ४८ बजेतक, **मकरराशि** दिनमें १२। ५१ बजेसे, **महानिशा-पूजा।** |
| अष्टमी ,, ११। २७ बजेतक | शनि | उ०षा० ,, ६। ४४ बजेतक | २४ ,, | **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत, स्वातीका सूर्य** दिनमें १। ४५ बजे। |
| नवमी ,, ११। १४ बजेतक | रवि | श्रवण ,, ७। ५ बजेतक | २५ ,, | **कुम्भराशि** रात्रिमें ७। २९ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ७। २९ बजे, **विजयादशमी।** |
| दशमी ,, ११। ३३ बजेतक | सोम | धनिष्ठा दिनमें ७। ५५ बजेतक | २६ ,, | **भद्रा** रात्रिमें ११। ५९ बजेसे। |
| एकादशी ,, १२। २४ बजेतक | मंगल | शतभिषा ,, ९। १६ बजेतक | २७ ,, | **भद्रा** दिनमें १२। २४ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ४। ३६ बजेसे, **पापांकुशा एकादशीव्रत ( सबका )।** |
| द्वादशी ,, १। ४२ बजेतक | बुध | पू०भा० ,, ११। ४ बजेतक | २८ ,, | **प्रदोषव्रत।** |
| त्रयोदशी ,, ३। २५ बजेतक | गुरु | उ०भा० ,, १। १६ बजेतक | २९ ,, | **मूल** दिनमें १। १६ बजेसे। |
| चतुर्दशी सायं ५। २३ बजेतक | शुक्र | रेवती सायं ३। ४३ बजेतक | ३० ,, | **भद्रा** सायं ५। २३ बजेसे, **मेषराशि** सायं ३। ४३ बजेसे, **पंचक समाप्त** सायं ३। ४३ बजे, **शरद् पूर्णिमा।** |
| पूर्णिमा रात्रिमें ७। ३१ बजेतक | शनि | अश्वनी रात्रिमें ६। २० बजेतक | ३१ ,, | **भद्रा** प्रात: ६। २८ बजेतक, **पूर्णिमा, मूल** रात्रि ६। २० बजेतक, **महर्षि वाल्मीकिजयन्ती, कार्तिकस्नान प्रारम्भ।** |

# कृपानुभूति

## स्वर्गसे वापसी

बात सन् १९९४ ई० के मध्यकी है। मैं अपने मित्रके साथ हैदराबाद गया था। वहाँ मुझे मित्रकी पत्नीने बताया कि वे एक वर्ष पूर्व गम्भीर रूपसे बीमार हो गयी थीं। उन्हें वहाँके प्रसिद्ध राजकीय चिकित्सालयमें उपचारके लिये भरती किया गया। उनसे उनकी बीमारीके विषयमें पूछनेपर उन्होंने जो घटना बतायी, वह एकदम आश्चर्यजनक एवं पराशक्तिके सम्बन्धमें सोच-विचार करनेको बाध्य करनेवाली है।

उन्होंने मुझे बताया कि चिकित्सालयके कर्मचारियों-चिकित्सकोंने उपचार, सेवा-शुश्रूषामें कोई कसर नहीं छोड़ी, पर मेरी हालत बिगड़ती ही गयी। तीन दिन बाद यह सोचकर कि अब मैं कुछ ही पलोंकी मेहमान हूँ, चिकित्सालयके कर्मचारियोंने मुझे बेडसे उतारकर नीचे सुलाकर श्वेत चादर ओढ़ा दी।

उन्होंने आगे बताया कि ज्योंही मुझे बेडसे उतारकर जमीनपर लिटाया गया तो द्वारपाल-जैसे दो व्यक्ति एकदम दूध-जैसे श्वेत कपड़े पहने मुझे लेने आ गये। दोनोंने मेरे दोनों हाथ पकड़े और मुझे अपने साथ चलनेको कहा। मैं नितान्त अशक्त बीमार थी, पर पता नहीं कहाँसे शक्ति आ गयी, उनसे कोई प्रश्न ही नहीं किया। मैं उनके साथ-साथ चल दी। उन्होंने मुझे एकाएक एक भव्य भवनके बाहर ले जाकर खड़ा कर दिया, मैं मौन खड़ी देखती ही रही। वहाँका वातावरण देखकर मैं प्रसन्न हो रही थी। स्वर्णमण्डित रत्नजटित दरवाजे थे, दरवाजोंके दोनों ओर दीवारोंपर विभिन्न देवी-देवताओंके मन मुग्ध कर देनेवाले आकर्षक चित्र बने थे, भव्य प्रासाद था वह, एकदम श्वेत पुता हुआ, सब लोग सफेद पोशाक पहने हुए थे। कुछ लोग मनपसन्द सुस्वादु प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। सेवकोंद्वारा षड्रस व्यंजन परोसे जा रहे थे। विभिन्न देवी-देवताओंकी मनोहारी तस्वीरें दीवारोंपर लगी हुई थीं, उनके नीचे ही भवन-प्रमुख, जो इस आलीशान भवनके स्वामी ही रहे होंगे, विराजमान थे। उनका आसन बहुमूल्य तथा चित्ताकर्षक था। सहायिकाएँ उनके दोनों ओर खड़ी चँवर डुला रही थीं, उनकी पोशाक शालीन एवं प्रसन्नतावर्धक थी। वहाँ कुछ लोग ध्यान एवं पूजा-पाठ, ईश्वर-आराधनामें व्यस्त थे, चारों ओर फूल खिल रहे थे, उनकी मधुर सुगन्ध मनको आह्लादित कर रही थी, वहाँ पहुँचते ही मनमयूर नाच उठा। वहाँ रहनेवालोंके पलंग कीमती तथा सुन्दर थे, सबको पूरी स्वतन्त्रता थी, लगा कि यह तो साक्षात् स्वर्ग है, सभी शान्त मनसे अपने-अपने काममें व्यस्त थे।

अचानक ही मुझे यहाँ लानेवाले दोनों व्यक्तियोंके संकेतोंपर एक आदमी एक बड़ी बही-सरीखी पुस्तक लेकर द्वारतक आया। उसने बहीको कई बार उलटा-पलटा तथा दोनों व्यक्तियोंको संकेतोंसे पता नहीं क्या कहा और हवाके झोंकेकी भाँति द्वार ही बन्द कर दिया। दोनों व्यक्तियोंके साथ ही मैं भी बाहर ही रह गयी और चाहते हुए भी मैं वह स्वर्गीय आनन्द न ले सकी, मैं उस परम सुखदायक निवासमें प्रवेशसे वंचित रह गयी। यह सब इतना जल्दी हो गया कि मानो प्रकाशकी किरण आयी और लुप्त हो गयी।

इसके बाद दोनों व्यक्ति मुझे वापस चिकित्सालयकी धरतीपर ले आये तथा लिटाकर वहीं रखी चादर ओढ़ा दी और स्वयं अदृश्य हो गये।

इसी बीच चिकित्सक रोगियोंको देखने आये। मुझे देखनेपर पाया कि श्वास चल रही है, पर बहुत धीमी गतिसे। उस डॉक्टरने वरिष्ठ चिकित्सकोंको बताया, उन्हें स्थितिकी जानकारी दी। वरिष्ठ चिकित्सकोंने परामर्शकर मुझे कुछ शीघ्रप्रभावी एवं जीवनरक्षक दवाइयाँ दीं। चिकित्सक भी आश्चर्य करते रह गये कि मुझे कितना लाभ हो रहा है तथा डेढ़-दो सप्ताहके उपचारके बाद मुझे चिकित्सालयसे छुट्टी दे दी गयी।

घरपर प्रसन्नता छायी हुई थी। सब लोग कह रहे थे—'भगवान्‌को धन्यवाद है, उनकी कृपा है।'

'काहेकी कृपा है, मैं तो भगवान्‌के चरणोंमें पहुँच गयी थी, स्वर्गमें भी उसीने बुलाया था तथा भगवान्‌ने वापस मुझे इस नरकमें ढकेल दिया।' उन्होंने अनमने मनसे उत्तर दिया। **—प्रो० जमनालालजी बायती**

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## सादा जीवन, उच्च विचार

विश्वविख्यात पुरातत्त्ववेता, इतिहासकार डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर भारतीय संस्कृति और इतिहासके अनन्य साधक-उपासक थे। मालवाके इतिहास और पुरातत्त्वके जीवित 'गजेटियर' डॉ० वाकणकर सादगी और सरलताके जीवन्त प्रतीक थे। विनम्र और सज्जन, मुसकुराते हुए वाकणकरजीसे जो एक बार भी मिला होगा, मैं नहीं समझता उनके अकृत्रिम स्वभावसे प्रभावित न हुआ होगा। अपनी वेशभूषाके प्रति वे जितने लापरवाह-से थे, इतिहास और पुरातत्त्वके प्रति उतने ही सजग द्रष्टा थे। उनकी पैनी नजरसे कोई चीज चूकने-छूटने नहीं पाती।

विक्रम विश्वविद्यालयके पुरातत्त्व विभागमें रहते हुए उन्होंने 'भीमबेटका'की खुदाईकर उससे प्राप्त 'मृद्पात्र' और सिक्कों तथा अवशेषोंके सहारे सारी दुनियाको चमत्कृत कर दिया था। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और मिस्रके 'तुतन खामन'के पिरामिडोंको विश्वकी प्राचीनतम सभ्यता माननेवाले पाश्चात्य विद्वानोंकी नजर भी डॉ० वाकणकरके कार्योंपर नतमस्तक हो गयी थी। संसारभरमें उनकी अगाध विद्वत्ताको सराहा गया, प्रशंसा की गयी। विश्वके अनेक विश्वविद्यालयों और विख्यात प्राच्यविदों, पुराविदोंने उन्हें ससम्मान शोधपत्र-वाचनहेतु आमन्त्रित किया। इससे पूर्व भी डॉ० वाकणकरने उज्जैनकी खुदाईकर पं० सूर्यनारायण व्यासद्वारा संस्थापित सिंधिया प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठानके प्राचीन प्रतिमा संग्रहालयको असंख्य दुर्लभ प्रतिमाओंसे सुशोभित किया था।

डॉ० वाकणकर विलक्षण चित्रकार भी थे। वे खड़े-खड़े मिनटोंमें आपका 'स्केच' बना देते, तो खुदाईमें से प्राप्त प्रतिमाओंको क्षण-तत्क्षण अपने केनवासपर सजीव बना देते। उनके द्वारा निर्मित अनेक चित्र, स्केच-लैंडस्केप, नक्शे भारतके अनेक पुरातत्त्व संग्रहालयोंका गौरव बढ़ा रहे हैं।

डॉ० वाकणकर अपनी युवावस्थामें भारतीय स्वतन्त्रता-संग्रामके अग्रगण्य सैनिकोंमें से एक रहे। वे एक कर्मठ क्रान्तिकारी थे और '**शठे शाठ्यम समाचरेत**' उनका दर्शन था।

प्राचीन और दुर्लभ स्वर्ण-रजत सिक्कोंका उनके पास अनुपम भण्डार था। उनकी विलक्षण स्मरणशक्तिमें सारे संसारका इतिहास कालक्रमसे भरा पड़ा था। उनसे मिलना इतिहासके अधखुले पन्नोंको पढ़ना होता था। वे स्वयं एक जीवित विश्वकोष हो चले थे, मानो सन्दर्भ-ग्रन्थ या मानक कोश हों।

मेरे पूज्य पिता पं० सूर्यनारायण व्यासके प्रति उनके मनमें अगाध श्रद्धा थी। वे पारिवारिक और आत्मीयताकी हदतक एक-दूसरेसे जुड़े थे। पूज्य पिताजीपर उन्होंने अनेक लेख लिखे थे। प्राय: ही वे 'भारती-भवन' हमारे आवास चले आते थे और घण्टों अन्तरंग चर्चाका आह्लाद वहाँ झलकता था। महाकाल मैदानपर 'संघ' की शाखा लगती और शीत-ऋतुकी ठंडी-ठंडी सुबह अक्सर जब वे हाफ पैन्ट पहने, डंडा हाथमें लिये घर आ जाते तो अपने बचपनमें मैं इस अद्भुत व्यक्तित्वको बड़े विस्मयसे देखा करता। उन दिनों मैं लगभग ८-९ वर्षका रहा होऊँगा, बच्चोंकी एक हास्यपत्रिकाका एक कार्टून पात्र उनके जैसा ही दिखता था और मैं उनके आनेपर उनसे वैसा ही मजाक करता था। मगर उस विलक्षण विद्वान्ने कभी मुझ अबोध बालककी हरकतोंका बुरा नहीं माना। प्राय: ही वे मुझसे मेरा नाम पूछते और मैं तुतलाते हुए 'आजशेखर' कहता। तब वे स्नेहसे चपत लगाते हुए कहते—'आज शेखर है भाई! तो कल क्या होगा?'

बड़े होनेपर तो शनै:-शनै: उनके सान्निध्यका निरन्तर अवसर मिला और विश्वास बढ़ता ही गया, निकटता आती ही गयी। पूज्य पिताजी उनपर सर्वाधिक गर्व करते थे और क्यों न करें; उन्होंने सम्राट् विक्रमके

काल-निर्धारणकी उनकी शोध-धारणाओंको सप्रमाण कृत कालगणनाके सन्दर्भोंमें कृत सम्वत्‌का स्वर्ण सिक्का प्राप्तकर सम्पुष्ट जो कर दिया था। इससे पहले पाश्चात्य-मतिके भारतीय विद्वानोंने विक्रम-समस्याको बड़ा उलझा रखा था—विक्रम हुआ भी या नहीं, कहाँ जन्मा, या कितने राजा विक्रम कहलाये—कब जनमे? ऐसे निर्भीक प्रश्नोंसे विद्वान् प्रमाण न होनेसे परेशान थे। पं० व्यास और डॉ० वाकणकरकी शोध ऐसे सारे विद्वानोंका मुँहतोड़ उत्तर हुआ करती थी।

पं० व्याससे आशीर्वाद और प्रेरणा लेकर उन्होंने भी 'भारती-भवन'-जैसा कला-संग्रहालय 'भारती-कला' उज्जयिनीमें सुस्थापित किया था। आज भी मध्यप्रदेशकी यह सर्वाधिक गतिमान संस्था कला, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्वका घर बनी हुई है। शायद ही मध्यप्रदेशमें कहीं इतना बड़ा व्यक्तिगत संग्रहालय और किसीका हो। डॉ० वाकणकरने चित्रकला, इतिहास और पुरातत्त्वमें अपने अनेक शिष्य तैयार किये थे। डॉ० विष्णु भटनागर, श्रीकृष्ण जोशी, सुरेन्द्र आर्य, डॉ० श्यामसुन्दर निगम, डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित, प्रमोद गणपत्ये-जैसे अनेक सामर्थ्यवान्, प्रतिभावान् विद्वान् उन्हींकी परम्पराके हैं तो कला-जगतमें चन्द्रशेखर काले, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे अनेक जाने-माने नाम उनकी प्रेरणा पाकर आगे आये हैं।

सारे संसारमें अपने पुरातत्त्वज्ञान और शोध-अनुसंधानके लिये सराहे गये डॉ० वाकणकरकी यह विडम्बना ही रही कि वे अपने शहरमें अजनबीसे रहे।

'लुप्त सरस्वती नदी' की खोजमें वे अपनी अस्वस्थतामें भी लगे रहते थे। दंगवाड़ाकी खुदाईमें तो वे मरते-मरते बचे, मगर उन्होंने अपने स्वास्थ्य और जीवनकी कभी परवाह भी नहीं की।

'पद्मश्री' मिलनेपर जब हम लोगोंने उनका सम्मान किया था, तो बड़े विकल मनसे उन्होंने एक मालवी कविता सुनायी थी—

***'म्हारे भाटो समझी ने***
***फेंकी मत दीजो***
***हूं नरा काम की चीज हूँ।'***

मुझे पत्थर समझकर फेंक मत देना, मैं बड़े कामका हूँ!

इतिहास, पुरातत्त्व और भारतीय संस्कृतिके शिखर-पुरुष होते हुए भी उन्हें किसी बातका लेशमात्र भी गर्व नहीं था। सादा जीवन और उच्च विचार उनके जीवनमें मूर्तिमान् था।—**डॉ० राजशेखर व्यास**

(२)

## भूल

पुरानी बात है, शहरमें एक बड़ी फर्मके मालिककी दूकानपर एक साधारण ग्रामीण व्यापारी आया। दूकानके मालिकने उसे गाँवसे सात-आठ सेर असली घी भेज देनेको कहा और हाथपेटी खोलकर थैलीमेंसे दस-दस रुपयेके चार नोट देते हुए फिर कहा कि 'ये लो चालीस रुपये, कम-ज्यादा लगेगा तो फिर देख लिया जायगा।' वह भाई बिना ही गिने नोटोंको जेबमें रखकर चला गया।

लगभग बीस मिनट बाद उसने लौटकर दूकानके मालिकसे कहा—'बाबूजी! दस रुपये कम हैं, ये तीस रुपये हैं। यहाँ मैंने नोट गिने नहीं, बाजारमें जरूरत पड़नेपर गिने तो दस रुपये कम हुए, आप जल्दीमें भूल गये।'

दूकानमालिकने चश्मेके अन्दरसे ऊपरकी ओर देखा तथा रोष एवं ऊबसे भरे शब्दोंमें कहा—'अरे भाई! तुम्हारी भूल हुई होगी। कहीं नोट गिर पड़ा होगा। मेरे हाथसे शामतक हजारों रुपये आते-जाते हैं, कभी गिनतीमें भूल नहीं होती।'

उसने कहा—'बाबूजी! भूल तो हरेकसे होती है। गिनकर देख लीजिये न।' यों कहकर उसने नोटवाला हाथ दूकानमालिकके सामने फैलाया।

दूकान-मालिकका मिजाज काबूसे बाहर हो गया। उसने ग्रामीण व्यापारी भाईको नीचे उतारते हुए कहा—'अब गिनकर क्या करूँ? अब तो तीस ही रुपये होंगे। मुझे बनाकर दस रुपये ऐंठना चाहते हो, यह नहीं होगा। चाहिये तो माँगकर ले जाओ।'

क्या सचमुच बाबूजी आपसे भूल नहीं होती? यों कहकर उसने स्वयं ही नोटोंके बीचसे तह किया हुआ सौ रुपयेका एक नोट निकालकर दूकान-मालिकको देते हुए कहा—'लीजिये बाबूजी, आपकी भूल……'

दूकान-मालिक क्या बोलता? देखता रह गया।

**—ब्रजलालराम चन्दा राणा**

(३)

## गुस्सा न आनेका उपाय

मेरा नाम गोपाल गर्ग है। मैं एक ग्यारह वर्षीय बालक हूँ। मैं पिछले कुछ दिनोंकी घटनाएँ आपके सामने रखना चाहता हूँ। एक दिन मैंने अपने पिताजीसे कहा कि मैं उनसे कुछ चीजें माँगना चाहता हूँ। उन्होंने कहा—सोचो कि मैंने उन सबके लिये मना कर दिया है। फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि वे कौन-सी चीजें हैं, जो तुम मुझसे माँगना चाहते थे? तब मैंने उन्हें उन खिलौनोंके बारेमें बताया। मेरे बारेमें एक बात यह है कि जब मुझे कोई चीज पानेका मन करता है और वह चीज मुझे नहीं मिलती है, तो मुझे बहुत गुस्सा आता है। उन्होंने पूछा कि जब उन्होंने मना किया तो मुझे गुस्सा आया क्या? मैंने कहा—नहीं, मुझे गुस्सा नहीं आया। तो उन्होंने पूछा कि जब तुम्हें कोई वस्तु मना कर दी जाती है तो तुम्हें गुस्सा आता है। इस बार क्यों नहीं आया? मैं इसका जवाब नहीं दे सका। तब उन्होंने मुझे भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका बासठवाँ श्लोक सुनानेके लिये कहा, जो इस प्रकार है—

**ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।**
**सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥**

जिसका तात्पर्य यह है कि अपनी पसन्दकी किसी वस्तुपर सोचनेसे हमारे मनमें उसके प्रति लगाव पैदा होता है, जिससे वह वस्तु पानेकी इच्छा पैदा होती है और उसकी प्राप्तिमें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

तब मुझे समझमें आया कि जो चीजें मैंने अपने पिताजीसे माँगी थीं, मैंने उन चीजोंके बारेमें ज्यादा नहीं सोचा था, इसलिये कामना उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिये पिताजीके द्वारा मना कर दिये जानेपर क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। मुझे यह भी लगा कि मैं कभी-कभी भगवद्गीता पढ़ता हूँ, इसलिये गुस्सा नहीं आया। अब मुझे लगा कि मेरे व्यवहारसे पिताजीको खुशी हुई है। इससे मेरे मनमें यह आशा जगी कि अब वह मुझे मेरी पसन्दका खिलौना ईनाममें दिलवा देंगे।

परंतु, मेरे द्वारा वह खिलौना माँगे जानेपर पिताजीने इस बार फिरसे मना कर दिया। अबकी बार मुझे गुस्सा आ गया। तब पिताजीने पूछा कि पिछली बार जब उन्होंने मना किया था, तब मुझे गुस्सा नहीं आया था, फिर इस बार क्यों आया? तब मुझे यह अन्तर पता चला कि इस बार उस खिलौने और मेरे बीचमें एक लगाव बन गया था, जिससे वह खिलौना पानेके लिये मेरे मनमें इच्छा पैदा हो गयी थी। फिर उस इच्छामें विघ्न पड़नेसे मुझे गुस्सा आ गया। फिर मुझे यह भी समझमें आया कि किसी चीजके बारेमें हम सोचें नहीं तो उससे लगाव नहीं बनेगा, तो फिर इच्छा भी नहीं होगी। ऐसी स्थितिमें उस वस्तुकी प्राप्तिमें बाधा पड़नेसे क्रोध नहीं आयेगा।

उसके बाद पिताजी बोले कि एक बार फिरसे मैं वह चीज उनसे माँगूँ। उन्होंने यह भी कहा कि अपने मनमें यह सोच रखो कि अगर मिल गयी तो ठीक, और नहीं मिली तो भी ठीक है। फिर मैंने उनसे अपनी पसन्दका एक अन्य खिलौना माँगा। तब पिताजीने कहा—अभी नहीं, चार दिन बाद दिलवाऊँगा। उससे मुझे कुछ गुस्सा इसलिये आया; क्योंकि समर्पण पूरा नहीं था, परंतु गुस्सा काफी कम आया; क्योंकि कुछ समर्पण तो था। मुझे मेरी पसन्दकी वस्तु मिले तो अच्छा और अगर नहीं भी मिले तो भी अच्छा—यह समर्पण बढ़ानेके मार्गपर मैं आगे बढ़ता रहूँगा। मुझे विश्वास है कि गुरुजीकी कृपासे एक दिन मुझे पूरी सफलता प्राप्त होगी।

इस प्रकार किसी वस्तुकी अप्राप्तिमें आनेवाले क्रोधका कारण उस वस्तुके प्रति आसक्ति है और गुस्सेसे बचनेका उपाय है कि उस वस्तुके प्रति आसक्ति ही न रखी जाय।—**गोपाल गर्ग**

# मनन करने योग्य

## लक्ष्मीजीके अनुकूल वातावरण तैयार करें

एक दिन लक्ष्मीजी इन्द्रके दरवाजेपर पहुँचीं।

बोलीं—'हे इन्द्र! मैं तुम्हारे यहाँ निवास करना चाहती हूँ।'

इन्द्रने आश्चर्यसे कहा—'कमले! आप तो असुरोंके यहाँ बड़े आनन्दपूर्वक रहती थीं। वहाँ आपको कुछ कष्ट न था। मैंने कितनी ही बार आपको अपने यहाँ बुलानेका महान् प्रयत्न किया, परंतु तब आप न आयीं और आज बिना बुलाये मेरे द्वारपर पधारी हैं। सो देवि! इसका कारण मुझे समझाकर कहिये।'

लक्ष्मीजीने प्रसन्नमुख उत्तर दिया— 'इन्द्र! कुछ समय पूर्व असुर बड़े धर्मात्मा थे। वे कर्तव्यपरायण रहते थे। अपना सब काम नियमित रूपसे करते थे; परंतु उनके ये सद्गुण धीरे-धीरे नष्ट होने लगे।'

'प्रेमके स्थानपर ईर्ष्या-द्वेष और क्रोध-कलहका उनके परिवारोंमें निवास रहने लगा। अधर्म, दुर्गुण और तरह-तरहके व्यसनों (मद्यपान और मांसभक्षण)-की वृद्धि होने लगी। इन दुर्गुणोंमें भला मैं कैसे रह सकती हूँ?'

'मैंने सोचा कि इस दूषित वातावरणमें अब मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिये दुराचारी असुरोंको छोड़कर मैं तुम्हारे यहाँ 'सद्गुणोंमें' निवास करने चली आयी हूँ।'

इन्द्र चकित रह गये। लक्ष्मीजीके निवास करनेका रहस्य उन्हें मालूम होने लगा। उन्होंने कहा— 'हे भगवती! वे और कौन-कौन-से दोष हैं, जिनके कारण आपने असुरोंको छोड़ा है, कृपा करके मेरे तथा आनेवाली संतानके लिये उन त्रुटियोंको विस्तारपूर्वक मुझे बतलाइये, जिससे मैं भविष्यमें सावधान रहूँ।'

लक्ष्मीजी इन्द्रपर विशेष कृपालु हुईं। उन्होंने वे सब रहस्य बता दिये, जिनके कारण उन्होंने असुरोंका परित्याग किया था।

लक्ष्मीजीने कहा—'इन्द्र! जब कोई वयोवृद्ध सत्पुरुष ज्ञानविवेकका उपदेश करते थे, तो असुर लोग उनका उपहास करते थे या उपेक्षासे निद्रा लेने लगते थे। यह मुझे बुरा लगा।'

'वृद्ध और गुरुजनोंके सम्मानका विचार न करके उनकी बराबरीके आसनपर बैठते थे। सत्कार, शिष्टाचार और अभिवादनकी बात वे लोग भूल गये थे। लड़के माता-पितासे मुँहजोरी करने लगे थे। वे बहुत राततक घूमते-फिरते, आवारागर्दी करते, चिल्लाते रहते; न स्वयं सोते, न दूसरोंको सोने देते थे। ये अकारण ही वैर-विवाद मोल ले लेते थे। यह मुझे अनुचित लगा। अतः मैं वहाँसे बुरा मानकर चली आयी।'

'असुरोंकी स्त्रियोंने पतियोंकी आज्ञा मानना छोड़ दिया था। पुत्रको पिताकी परवा न रही। शिष्य आचार्योंकी तरफ मुँह मटकाने लगे। समाजकी समस्त मान-मर्यादाएँ जाती रहीं।'

'वे लोग सुपात्रोंको दान और लँगड़े-लूले भिखारियोंको भिक्षा न देकर धनको विलासितामें खर्च करने लगे। घरके बच्चोंकी परवा न करके बूढ़े-बूढ़े पुरुष चुपचाप मधुर मिष्ठान्न अकेले ही खाते। जहाँ ऐसे निर्लज्ज आचरण होते हैं, उनके यहाँ इन्द्र! मैं भला किस प्रकार रह सकती हूँ?'

'ये असुरलोग फलदार और छायादार हरे-भरे वृक्षोंको काटने लगे। दिन चढ़ेतक सोते रहते थे, प्रहर रात्रि गयेतक खाते रहते, भक्ष्य और अभक्ष्य अन्नका विचार न करते। सत्कर्म करना तो दूर, दूसरोंको करते देखते तो उसमें भी विघ्न उपस्थित करते।'

'स्त्रियाँ फैशन, आलस्य और व्यसनोंमें व्यस्त रहने लगीं। घरमें अनाजका अनादर होने लगा, चूहे खाकर अन्नको नष्ट करने लगे। खाद्य पदार्थ खुले पड़े रहते, जिन्हें कुत्ते-बिल्ली चाटते।'

'घरमें ही पापाचार, स्वार्थ, पक्षपात बढ़ गया। असुरोंकी वृत्ति मादक द्रव्योंमें, जुए-शराब-मांसमें, नाच-तमाशोंमें बढ़ने लगी। लापरवाहीका हर जगह राज्य हो गया। ऐसी दशामें नौकरोंकी खूब बन पड़ी। वे चुरा-चुराकर अपना घर भरने लगे। उनके ऐसे आचरण देखकर मेरा जी जलने लगा। दुखी होकर एक दिन मैं चुपचाप असुरोंके घरोंसे चली आयी। अब वहाँ दरिद्रताका ही निवास होगा।'

'हे इन्द्र! तुम ध्यानपूर्वक सुनो। मैं परिश्रमी, कर्तव्यपरायण, विचारवान्, सदाचारी, संयमी, मितव्ययी, जागरूक और नियमित उद्योग करते रहनेवालेके यहाँ निवास करती हूँ। जबतक तुम्हारा आचरण धर्मपरायण रहेगा, तबतक तुम्हारे यहाँ मैं बनी रहूँगी।'

लक्ष्मीके इस कथनने इन्द्रको एक नयी शक्ति दी।

उन्होंने बड़ी श्रद्धा और आदरपूर्वक लक्ष्मीजीको अभिवादन किया और कहा—'हे कमले! आप मेरे यहाँ सुखपूर्वक रहिये। मैं ऐसा कोई अधर्ममय आचरण नहीं करूँगा, जिससे नाराज होकर आपको मेरे घरसे जाना पड़े।'

# गीताप्रेससे प्रकाशित रोचक कहानियोंकी पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय

**भूले न भुलाये ( कोड 2047 )**—प्रस्तुत कहानी-संग्रहमें कुल ३२ कहानियाँ विशिष्ट रेखाचित्रोंसहित प्रकाशित की गयी हैं। यद्यपि इन कहानियोंकी आधारशिला ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक है फिर भी मानवीय जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति इनमें पूर्णरूपसे हुई है, जिसके व्याजसे परोक्ष अथवा अपरोक्ष नैतिक शिक्षा भी हमें प्राप्त होती है। मूल्य ₹२५

**आदर्श कहानियाँ ( कोड 1093 )**—इस पुस्तकमें स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित ३२ कहानियोंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹१५

**चोखी कहानियाँ ( कोड 147 )**—इस छोटी-सी पुस्तिकामें अत्यन्त सरल तथा रोचक भाषामें भगवान्‌का भरोसा, अधम बालक, स्वाधीनताका सुख, सत्य बोलो, सर्वस्वदान आदि ३२ सुन्दर कहानियोंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹१२

**परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ ( कोड 888 )**—इस पुस्तकमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तको पुष्ट करनेवाली २४ सत्य घटनाओंका सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹२५

**एक लोटा पानी ( कोड 122 )**—इस पुस्तकमें एक लोटा पानी, बलिदान, मूर्तिमान् परोपकार, भक्त रविदास, अहिंसाकी विजय आदि २४ कहानियोंका अनुपम संग्रह है। मूल्य ₹२५

**प्रेरणाप्रद-कथाएँ ( कोड 1782 )**—मानव-जीवनके विकासमें सत्कथाओंका विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत पुस्तकमें बावन पौराणिक, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक सरस कथाओंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹२५

**उपयोगी कहानियाँ ( कोड 137 )**—इस पुस्तकमें भला आदमी, सच्चा लकड़हारा, दयाका फल, मित्रकी सलाह, अतिथि-सत्कार आदि ३६ प्रेरक कहानियोंका अनुपम संग्रह है। सरल तथा रोचक भाषामें संगृहीत ये कहानियाँ बालकोंके जीवन-निर्माणमें विशेष सहायक हैं। मूल्य ₹२०

**प्रेरक कहानियाँ ( कोड 1308 )**—स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संकलित बुद्धिमान् बनजारा, हीरेका मूल्य आदि ३२ सुन्दर कहानियोंका संकलन। मूल्य ₹१२

**उपदेशप्रद कहानियाँ ( कोड 680 )**—ज्ञान, वैराग्य, सेवा, परोपकार, ईश्वर-विश्वास, भगवद्भक्तिकी संवर्द्धक १२ कहानियोंका मनोहर संकलन। मूल्य ₹२०

**शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ ( कोड 283 )**—लौकिक-पारलौकिक कल्याणकी सिद्धिहेतु गृहस्थ साधकोंके लिये उपदेशप्रद ग्यारह कहानियोंका एक सुन्दर संकलन। मूल्य ₹१५

**पौराणिक कहानियाँ ( कोड 1669 )**—विभिन्न पुराणोंसे संकलित शिवभक्त नन्दभद्र, नारायण-मन्त्रकी महिमा, कीर्तनका फल आदि ३६ उपयोगी कहानियोंका सुन्दर संग्रह। मूल्य ₹२०

**पौराणिक कथाएँ ( कोड 1624 )**—इस पुस्तकमें परहितके लिये सर्वस्व त्याग, मौतकी भी मौत, भक्तका अद्‌भुत अवदान, सत्यव्रत भक्त उतथ्य आदि अनेक सरस कथाओंका प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹१५

**सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ ( कोड 1673 )**—इस पुस्तकमें भक्त श्रीरामशरणदासजीके द्वारा संकलित तथा कल्याणमें पूर्वप्रकाशित स्थानका प्रभाव, गाँवकी बेटी अपनी बेटी, तेलीका बैल बनकर ऋण चुकाया आदि ३६ प्रेरक एवं सत्य घटनाओंका संग्रह किया गया है। मूल्य ₹२८

**तीस रोचक कथाएँ ( कोड 1688 )**—प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न पुराणोंसे संकलित तीस शिक्षाप्रद एवं रोचक कथाओंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹१५

**गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ ( कोड 1938 ) पुस्तकाकार**—पद्मपुराणमें वर्णित गीता-पाठके अठारहों अध्यायके माहात्म्यका सचित्र वर्णन। मूल्य ₹१०

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

प्र० ति० 20-08-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

# गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रचारमें सहयोग दे सकते हैं।

**गीता-दैनन्दिनी (सन् २०२१) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।**

**(इस वर्ष केवल दो आकार-प्रकारमें सिमित संख्यामें गीता-दैनन्दिनी का प्रकाशन किया गया है)**

पूर्वकी भाँति दोनों संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद मूल्य ₹ ८५

पॉकेट साइज—सजिल्द आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक मूल्य ₹ ४०

## 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

| कोड | विशेषाङ्क | मूल्य ₹ | कोड | विशेषाङ्क | मूल्य ₹ | कोड | विशेषाङ्क | मूल्य ₹ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 41 | शक्ति-अङ्क | २०० | 1133 | सं० श्रीमद्देवीभागवत | ३०० | 584 | सं० भविष्यपुराण | २०० |
| 616 | योगाङ्क (परिशिष्टसहित) | २८० | 789 | सं० शिवपुराण | २५० | 1131 | कूर्मपुराण—सानुवाद | १५० |
| 636 | तीर्थाङ्क | २३० | 631 | सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण | २५० | 1044 | वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित | २२० |
| 604 | साधनाङ्क | २५० | 653 | गोसेवा-अङ्क | १३० | 1132 | धर्मशास्त्राङ्क | २०० |
| 1773 | गो-अङ्क | २०० | 1135 | भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क | १६० | 1189 | सं० गरुडपुराण | २०० |
| 44 | संक्षिप्त पद्मपुराण | २८० | | | | 1592 | आरोग्य-अङ्क | २६० |
| 539 | संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण | १०० | 572 | परलोक-पुनर्जन्माङ्क | २२० | 1610 | महाभागवत (देवीपुराण) | १३० |
| 1111 | संक्षिप्त ब्रह्मपुराण | १५० | 517 | गर्ग-संहिता | १६५ | 1793 | श्रीमद्देवीभागवताङ्क-पूर्वार्द्ध | १०० |
| 43 | नारी-अङ्क | ३०० | 1113 | नरसिंहपुराणम्-सानुवाद | १०० | 1887 | ,, ,, अजिल्द उत्तरार्ध | ७५ |
| 659 | उपनिषद्-अङ्क | २३० | 1362 | अग्निपुराण | २६० | 1985 | श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क-सानुवाद | २५० |
| 279 | सं० स्कन्दपुराण | ४२५ | 1432 | वामनपुराण-सानुवाद | १५० | | | |
| 40 | भक्त-चरिताङ्क | २५० | 557 | मत्स्यमहापुराण (सानुवाद) | ३०० | 2066 | श्रीभक्तमाल-अङ्क | २५० |
| 1183 | सं० नारदपुराण | २२० | 657 | श्रीगणेश-अङ्क | १८० | 1980 | ज्योतिषतत्त्वाङ्क | १५० |
| 667 | संतवाणी-अङ्क | २५० | 42 | हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित) | १५० | 2125 | श्रीशिवमहापुराणाङ्क-पूर्वार्ध | १४० |
| 587 | सत्कथा-अङ्क | २३० | 1361 | सं० श्रीवाराहपुराण | १२० | 2154 | ,, ,, -उत्तरार्ध | १४० |
| 574 | संक्षिप्त योगवासिष्ठ | १८० | 791 | सूर्याङ्क | १५० | 2235 | श्रीराधामाधव-अङ्क | १४० |

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005

book.gitapress.org gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।